प्रियग्रन्थमाला पुष्प सं० ५५

ब्रह्ममुनिग्रन्थमाला पुष्प संख्या २५

निजजीवन-वृत्तवनिका

जिसमें—

निज जीवन के कतिपय ऐसे विविध वृत्त जिनसे मानव को अपने भविष्य के निर्माणार्थ पाठ मिल सके और सावधान रह कर सफलता प्राप्त कर सके।

लेखक :
स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड
गुरुकुल कांगडी (हरिद्वार)

प्रकाशक :—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द भवन (रामलीला मैदान)
नई दिल्ली-१

प्रथमवार ५०० | जनवरी १९६१ ई० माघ २०१७ वि० | मूल्य-सजिल्द ७५ नए पैसे अजिल्द ५० नए पैसे

मुद्रक—सार्वदेशिक प्रेस, दरिया गंज,
पाटौदी हाउस, दिल्ली-७

विषय-सूचि

विषय— पृष्ठ—

[१]

वंशपरिचय १-५

[२]

बालकाल ६-१७

[३]

आर्यसमाज में प्रवेश १८-२३

[४]

गृहत्याग और संस्कृत का अध्ययन २४-४६

[५]

विशेष अध्ययन और कार्यकाल ४७-५२

विषय— पृष्ठ—

[६]

विशेष लेखन कार्य ५३-५६

[७]

संन्यास ग्रहण, प्रचार और लेखन कार्य ६०-६८

[८]

विशेषवृत्त ६६-७२

[६]

अन्तिम निराशा, पश्चात्ताप और चेतावनी ७३-७६

प्रकाशकीय-वक्तव्य

श्रीयुत स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड की 'आत्म-कथा' आर्य जगत के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता होती है।

श्री स्वामी जी वैदिक वाङ्मय के उद्भट विद्वान् हैं। उनकी सामाजिक और साहित्यिक सेवाएं बहुमुखी और विशद हैं। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों से आर्य समाज के साहित्य को समृद्ध एवं गौरवान्वित किया है जो जनता और राज्य दोनों में समादृत हो रहे हैं। "बृहद् विमान शास्त्र" ग्रन्थ से न केवल जनसामान्य में ही अपितु विद्वन्मण्डल एवं राजवर्ग में भी उनकी ख्याति में चार चांद लग गए हैं।

श्री स्वामी जी का उन्नतजीवन स्वनिर्मित है। विशाल और धनी घर में जन्म लेने और पालित-पोषित होने पर भी समृद्धि और विलासिता के आकर्षणों एवं प्रलोभनों से ऊपर उठकर आजन्म ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना, आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा की ओर

मन का प्रेरित होना, उनमें निष्णात बन जाना और एक मात्र आर्य समाज की सेवा में अपने को सर्वात्मना लगा देना साधारण बात नहीं है।

श्री स्वामी जी की आत्म-कथा यद्यपि संक्षिप्त है परन्तु है बड़ी सारगर्भित एवं शिक्षा-प्रद।

आशा है आर्य जनता इससे यथेष्ट लाभ उठायेगी।

श्री बाबू धर्मपाल धर्मवीर जी सहारनपुर निवासी का भी धन्य-वाद करते हैं जो इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ हमें धन प्रदान किया है।

दयानन्द भवन,
(रामलीला मैदान)
१७-१२-६०

रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
नई दिल्ली-१

प्राक्कथन

निज जीवनवृत्त के लिखने का विचार न था अतएव मैंने इसके लिये वृत्तसञ्चयिका (डायरी) नहीं बनाई हुई थी और न ही कभी कुछ किसी प्रकार का लेख-उल्लेख किया हुआ था पुनः किसी वृत्त के तिथिक्रम से लिखने की तो कथा ही क्या ? अतएव विना तिथिक्रम के निजस्मृति के आधार पर ही* लिख रहा हूं। इस समय जीवनवृत्त पर लिखने का विचार हुआ भी इसलिये कि प्रत्येक के जीवन में अनेक कष्ट-कठिनाईयां आया ही करती हैं यदि उनका प्रकाश अन्यों के सम्मुख कर दिया जावे तो वे भी उन कष्ट-कठिनाइयों से बच सकें और ऐसा करना है भी उचित या मानवीय कर्त्तव्य क्योंकि जिस मार्ग में जहां भय कण्टक लगा हो उसका द्योतन करना उपकारक एवं पुण्य कर्म है। मार्ग के भयपूर्ण स्थल स्थानों में पट्टिकाएं (बोर्ड) और जल स्थानों में ध्वजस्तम्भ

*इसका लेखन १।४।१९५९ ई० से प्रारम्भ किया है

एवं प्रकाशस्तम्भ लगाए ही जाते हैं। सिकन्दर ने भी तो धन-सम्पत्ति के संग्रह में जीवन गमा देने पर अन्त में अपने शव के दबाने को ले जाते समय अपने दोनों हाथ रिक्त फैलाते दिखाते हुए ले जाने का आदेश सम्पत्ति शालियों को चेताने के लिये दिया था—

छोड दुर्ग रण कोष सभी कुछ रिक्त हस्त है जाता।
चला सिकन्दर कफन से बाहिर दोनों हस्त दिखाता॥

इसके अतिरिक्त जीवन में कई स्थल निराशा के भी आ जाया करते हैं परन्तु सतत प्रयत्न करते रहने या जीवन की वर्तमान गति को विशिष्टरूप में परिवर्तित कर लेने एवं यथार्थ बना लेने से निराशा दूर होजाया करती है और आशंस्य एवं इच्छित वस्तुएं भरपूर पा आया करती हैं, इस बात का ज्ञान होकर जीवन को बहुत सहारा अन्तःस्थल में धैर्य एवं आश्वासन प्राप्त होता है। साथ ही अनेक कार्यों की फलसिद्धि अपने अपने प्रयत्न के आधार पर अनिवार्य रूप से हुआ करतीं है इसका भी जीवनपथ के पथिक के सम्मुख आजाना और उसका प्रकाशित करना भी मानव का धर्म है अतएव इस "निजजीवनवृत्तवनिका" को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता हूं।

भावत्क :—

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

निज जीवन वृत्त वनिका

: १ :

वंश परिचय

मेरा जन्म पुरातन वर्ण परम्परा के अनुसार वैश्य अग्रवाल वंशमें हुआ था। माता का नाम भागीरथी देवी पिता का नाम श्री राजाराम पितामह का श्री वेणीप्रसाद जमींदार नम्बरदार और प्रपितामह का नाम श्री मङ्गलसेन रईस था। श्री प्रपितामह जी ठेकेदारी भी करते थे उनका एक पाचक देवीसहाय नाम का जन्म जात ब्राह्मण साथ रहता था और भोजन बनाया करता था जो कि हमारे यहां ५५ वर्ष तक पाचक का कार्य करता रहा जिसे मैंने भी स्वयं देखा है। वह कहा करता था कि दिल्ली में यमुना का पुल हमारे ठेके में बनाथा। हमारे वंश में दो कार्य और होते थे एक सर्राफी दूसरे जमींदारी। हमारा स्थान जिला सहारनपुर में यमुना के इस पार 'लखनोती'

नाम का था जिसे संस्कृत ग्रन्थों में 'लक्ष्मणावती' नगरी कहा गया है और उसे छोटा लखनऊ भी कोई कहते हैं, वहां राजा लक्ष्मण या लखन का राज्य था, राज्य नगर होने के दो चिह्न आज तक वहां मिलते है, एक तो प्राकार (परकोटा) जो अस्त व्यस्त नष्टप्राय: है जिसे कोटला कहते हैं हमने बालपन में कोटले का रुपया भी देखा है। दूसरा नगर से बाहिर पूर्व दिशा में दुर्ग (किला) है जो आज तक विद्यमान है बाहिर से तो ठीक सा है परन्तु अन्दर से ध्वस्त सा है। राजा लखन पर मुगलों का आक्रमण होकर मुगल राज्य स्थापित हुआ मुगलों के साथ पठान और बिल्लोच भी आये मैंने भी वहां रहते हुए देखे हैं अभी भी रहते हैं। नवाबों के बड़े-बड़े मकबरे और शिया लोगों के इमाम बाड़े भी वहां हैं। मुगलों के पश्चात् अंग्रेज राज्य स्थापित हुआ पुनः लखनोती के २० बिस्से सम्पत्ति में से १० बिस्से पौल साहेब अंग्रेज की सम्पत्ति हो गई जिसके उत्तराधिकारी अभी भी सहारनपुर और मसूरी में रहते हैं और आज तक भी उनकी सम्पत्ति का एक भाग है। पुनः १० बिस्सों में से ५ बिस्से हमारी सम्पत्ति थी, एवं दश ग्राम हमारी सम्पत्ति थी मुझे स्मरण है जब कि मैं अपने पितामह के साथ अपने ग्रामों में जाता था उन ग्रामों में से भगवान्‌पुर और नागल दो नाम ही अपने ग्रामों के अभी तक स्मरण हैं।

पितामह बड़े दानी थे, मैंने स्वयं देखा है कि खेतों से अन्न के गाडे भर कर आते थे उधर मारवाड़ में दुर्भिक्ष पड़ने से मारवाड़ियों के डेरे आ जाते थे उन्हें वे अन्न के भरे गाडे लुटा

दिये जाते थे। भोजन का भी निरन्तर सदावर्त्त लगा रहता था। पितामह निष्पक्ष दान देते थे मुसलमानों की मसजिदों तक में भी देते थे, वे सभी हिन्दू मुसलमानों के प्यारे थे। उनके सम्बन्ध में कई बातें वहां प्रसिद्ध हैं, जैसे—दुर्भिक्ष के समय निठल्ले गरीब नगरवासियों को कह दिया कि जाओ हमारे खेतों में से कंकर चुग डालो सायं आकर धन अन्न ले लो। उनकी उदारता की एक बात यह भी प्रसिद्ध है कि सहारनपुर से मिट्टी की बड़ी हांडी में हम लोगों के लिये जलेबी भर कर ला रहे थे मार्ग में अपनी बहल-गाड़ी का एक बैल बैठ गया तो पितामह ने गाड़ीवान् से कहा कि गाड़ीवान्! इस बैल ने जलेबियां देख ली हैं इसे कुछ जलेबी खिला दो, खिला दी गई बैल चल पड़ा पर आगे चल कर फिर बैठ गया पुनः जलेबी खिला दी गई चल पड़ा, फिर बैठ गया फिर खिला दी गई अन्ततः सारी जलेबियां बैल को खिला दी गई। ऐसे ही किसी किसान ने आकर कहा नम्बरदार साहेब अब के तो खेत में कुछ नहीं हुआ आपको क्या बटाई दें, "अच्छा तो तू कुछ मत दे" उसकी सरकारी मालगुजारी भी घर से दे दी पितामह की दानशीलता को उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री मंसबराय (मेरे ताऊ जी) ने अपनी उर्दू की पुस्तक "क़वायद जांचा मंजूम" में लिखा है :—

मेरा नाम है मंसबराय दिलशाद।
पिदर का नाम है लाला बेणी परशाद॥

सखी दिल जिनका आलम में है मशहूर।
मगर है दौरे अफलाकी से मजबूर॥

उस हमारे पुराने पाचक देवीसहाय ने तथा अन्य वृद्ध जनों ने हमें बतलाया कि तुम्हारे पितामह ने गंगोह नगर के किसी सेठ से दश सहस्र रुपये ऋण लेकर दान में लुटा दिए सूद दर सूद से शीघ्र बीस सहस्र हो गए सेठ ने ग्राम नीलामी पर चढ़वा स्वयं बोली बोल कर अपने नाम करा लिया। ऐसे कई ग्राम नीलाम हुए, वे कहा करते थे कि अमुक ग्राम ११ सहस्र में अमुक ग्राम १५ सहस्र में और अमुक २२ सहस्र में नीलाम करा कर स्वयं बोली बोल कर सेठ द्वारा छुड़ाए गए, २२ सहस्र नीलामी सो भी उसी सेठ की अपनी बोली एक लाख की सम्पत्ति तो थी ही, आज कल तो १० लाख से भी ऊंचे की बैठे। इस प्रकार पितामह की दानशीलता में सारी सम्पत्ति चली गई*। मेरे समय तक भी कुछ

*पितामह की दानशीलता का एक विचित्र वृत्त यह भी बताया जाता है कि उन्होंने अपनी पुत्री (हमारी बुआ) को जान बूझ कर अग्रवाल वैश्य वंशज एक निर्धन कुमार के साथ विवाह दिया यह कहकर कि यह कन्यादान है और दान का फल तो गरीब को देने में है। बुआ का एक पुत्र एम० ए० है और पौत्र पौत्रियां हैं जो ईश्वर की कृपा से उच्चशिक्षा प्राप्त हैं। बड़ी पौत्री एम० ए० बी० टी० है राजस्थान यूनिवर्सिटी की गोल्ड मैडलिस्ट और दिल्ली यूनिवर्सिटी की बी० टी० में प्रथम तथा पुरस्कृत और वहीं यूनिवर्सिटी में बी० टी० की प्रोफेसर है। दूसरी पौत्री एम०बी०बी०एस० लेडी डाक्टर और तीसरी पौत्री अर्थशास्त्र में एम० ए० है जयपुर में प्रोफेसर है। तीन पौत्र जयपुर में इंजीनियर हैं।

सम्पत्ति छः सात सौ पक्के बिघे भूमि, ४५ या ४८ पक्के बिघे का उद्यान (बाग) जिसमें सभी फल कलमी आम भी थे और कई मकान तथा हवेली भी बड़ी शेष थीं। वैसे तो गौ, भैंस, बैलों का बाड़ा भी गौशाला जैसा मैंने अपने यहां देखा था। बहल, गाड़ा, सरकारी शुल्क उगाहने वाला चपरासदार और अन्य कई भृत्य भी अपने यहां देखे हैं।

: २ :

बालकाल

मेरा जन्म संवत् १९५० वि० फा० बदी त्रयोदशी दिन रविवार को हुआ था, जन्म मातुल गृह में (मामा के यहां) होने से वहां मामराज के नाम से कहाजाता रहा परन्तु पितृगृह में प्यारेलाल नाम रखा गया और यही नाम प्रसिद्ध रहा। जन्मोपरान्त जब सुध बुध आई तब से अपने अत्यन्त शैशव काल तक की अनेक बातें मुझे स्मरण हैं, यहां तक कि माता का स्तन्यपान क्यों छोड़ा ? स्तनों पर कड़वी ओषधि लगा दी गई थी मुख कड़वा हो जाने पर छोड़ा, वह अवस्था स्यात् डेढ़ दो वर्ष की होगी। माता के द्वारा आटा गून्दने वाली छोटी सी परान्त में बिठलाकर मुझे स्नान कराया जाना भी स्मरण है। प्रारम्भ में मुझे नाक साफ करना नहीं आता था बादामों कालोभ देकर नाक से श्वास बल से बाहिर फिंकवा कर नाक साफ करना सिखलाया था यह भी स्मरण है तब मैं लगभग ४ वर्ष का हुआ हूंगा।

उर्दू स्कूल में अध्ययन—

जब मैं ६ वर्ष का हुआ तो स्थानीय उर्दू स्कूल में पढ़ने बिठा दिया गया क्योंकि उस समय वहां स्कूल में उर्दू ही पढ़ाई जाती थी। मैं अलिफ क्लास से बे क्लास में आया और ३ वर्ष तक बे क्लास में ही पड़ा रहा। इसका कारण यह था कि जैसे ही परीक्षा के दिन निकट आते तो मेरे मामाजी सहारनपुर से आते और मुझे साथ ले जाते थे मैं फिर उसी बे क्लास में पड़ा रहता था जब मुझे पता चला कि मेरे बे क्लास में पड़े रहने का कारण परीक्षा के दिनों में मामा जी के साथ चले जाना है तो मैं फिर चौथे वर्ष उनके साथ नहीं गया। तब से निरन्तर परीक्षा में उत्तीर्ण होता रहा और ऊंचे नम्बरों में अपितु प्रत्येक श्रेणि में काक्षिक (मानीटर) रहा। बे क्लास से दर्जा १ में पुनः २ में ३ में ४ में और ५ आया। दर्जे ४ की स्थानीय परीक्षा पास कर प्रथम आ पुनः जिले भर के सैकड़ों स्कूलों की छात्रवृत्ति योग्य परीक्षा में भी तीसरे नम्बर पर आया, आता तो दूसरे नम्बर पर किन्तु अपने प्रश्नोत्तर दूसरे को दयावश बतला दिये थे। तथापि वह परीक्षा भी ऊंचे नम्बरों में पास कर उस छात्रवृत्ति का अधिकारी बना। ५ वीं श्रेणी में पहुंच कर गंगोह उर्दू हाई स्कूल में प्रविष्ट हुआ। परन्तु कुछ दिनों में ही उर्दू पढ़ना छोड़ दिया। उस समय लगभग १३ वर्ष की आयु थी। उर्दू पढ़ते हुए स्कूल में हमारे शिक्षक मुंशी करीमबख्श ने हमें कुछ दिन हिन्दी भी प्राईवेट पढ़ाई थी. यह कह कर तुम हिन्दू हो हम से हिन्दी पढ़ लो, घर हमारा बड़ा था चाहे सप्रयोजन हमें

कुछ हिन्दी पढ़ाई—एक दो छोटी सी पुस्तक पढ़ाई—पर भविष्य में उससे मुझे बहुत लाभ हुआ जिसका आगे वर्णन आयगा।

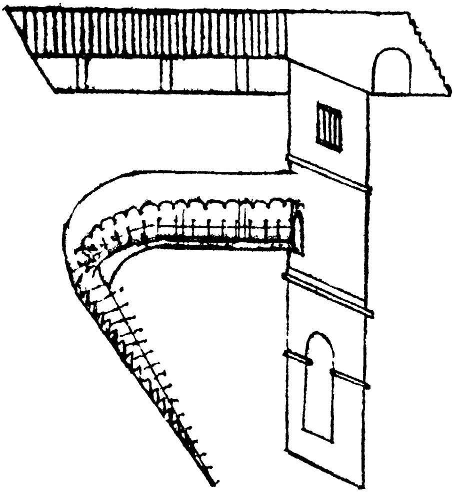
पढ़ाई के सम्बन्ध में माता जी की ओर से प्रेरणा—

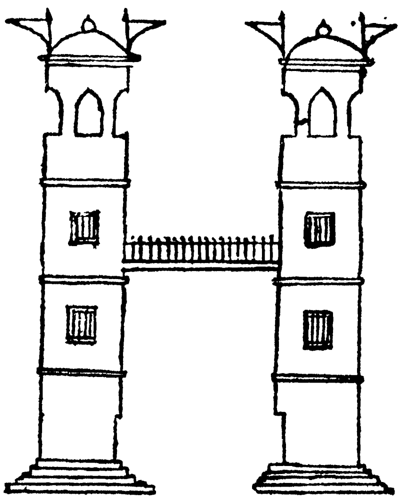
मैं नहीं जानता कि माता जी कुछ पढ़ी हुई थी या नहीं क्योंकि उनके देहान्त के समय मैं साढ़े ८ वर्ष का था। एक स्थान पर कूंआ खुद रहा था, मैं उसका तमाशा देख रहा था तो एक व्यक्ति ने कहा कि तू यहां खड़ा है तेरी माता मर गई है। मैं घर आया माता का शव पड़ा था सब रो रहे थे मैं चकित हो शव के पास खड़ा हो गया, तथापि माता के सम्बन्ध में इतना तो स्मरण है जब मैं पढ़ कर स्कूल से घर पर आता वह पाठ सुनती थी मैं पाठ के सम्बन्ध में कुछ पूछता था तो वह बतलाया समझाया करती थी। उस समय एक बार मैं पिता जी के साथ सहारनपुर में बड़े प्रसिद्ध वकील कल्याणसिंह के पौत्र शिवप्रसाद के विवाह में गया था उसके विवाह में नाचने गाने के लिए ७ वेश्याएं बुलाई गईं थी, घर आकर माता जी को मैंने कहा था माता जी मेरे विवाह में भी ७ वेश्याएं मंगाना, मुझे स्मरण है माता जी ने उत्तर दिया था तुम पढ़ लो फिर वेश्याएं बुला देंगे। उस समय मैं कोई ७ वर्ष का था। दीपावली पर माता जी मेरे लिए कागज के हाथी घोड़े मनुष्य आदि कैंची से काट कर एक घूमने वाला शिकारगाह नाम का कन्दील बनाया करती थीं तब मैं वे कैंची से काटे जाते हुए देख और कुछ माता द्वारा काटना सीख कर स्वयं काटने लगा और पेंसिल स्याही आदि से चित्रकारी भी कागज पर करने लगा तथा ड्राइंग खींचने

में श्रेणि में प्रथम रहता था, धीरे धीरे फोटो का इन्लार्ज करने एवं मनुष्य को सामने बिठला कर हाथ से पेंसिल से फोटो खींचने तक कार्य में मैं सफल हुआ। एक चित्र गुरुकुल कांगड़ी में भी श्री बाबा श्रीकृष्ण जी का उन्हें सामने बिठा कर देख देख कर हाथ से खींचा था।

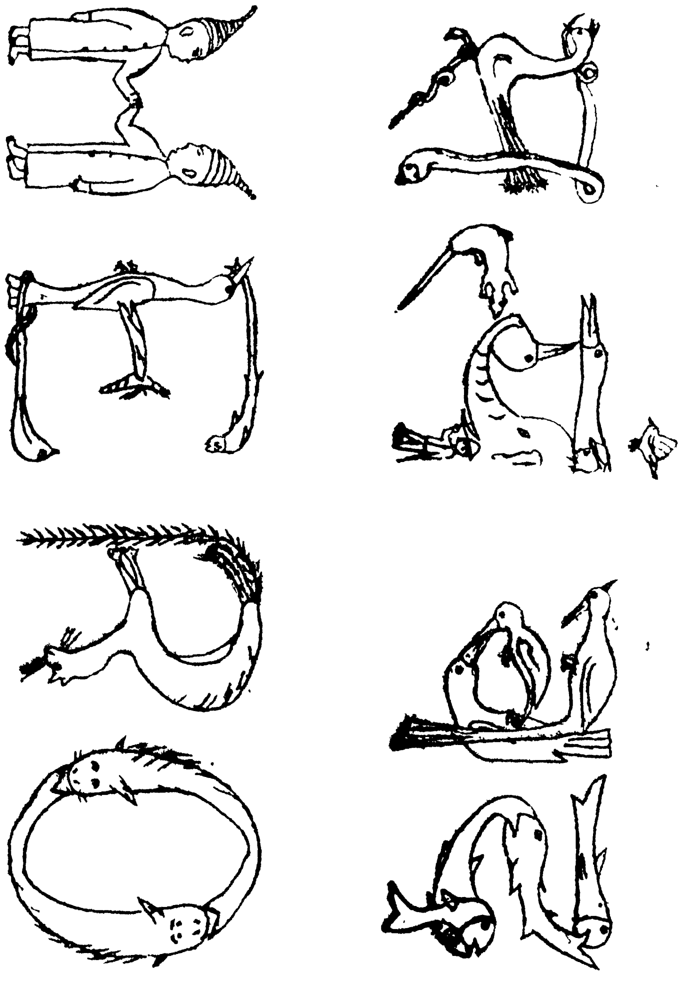
अब से ३० वर्ष पूर्व के पेंसिल के बनाए हुए कुछ अक्षरकला के चित्र पड़े थे जिन के ब्लाक चित्र अगले पृष्ठों पर दिए जाते हैं—

पार्थिव सम्पुटित आकाशीय कला
(मकानों से अक्षर रचना कला)





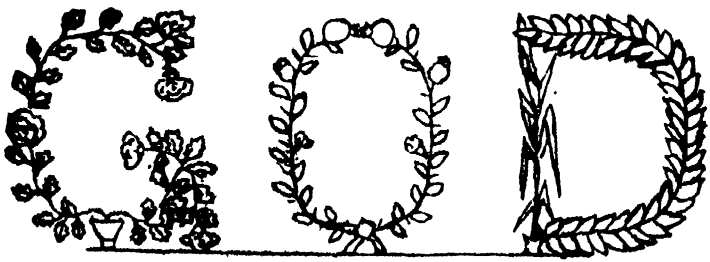
आण्य सम्पुटित आकाशीय कला
(प्राणियों से अक्षर रचना कला)



वायव्य सम्पुटित आकाशीय कला

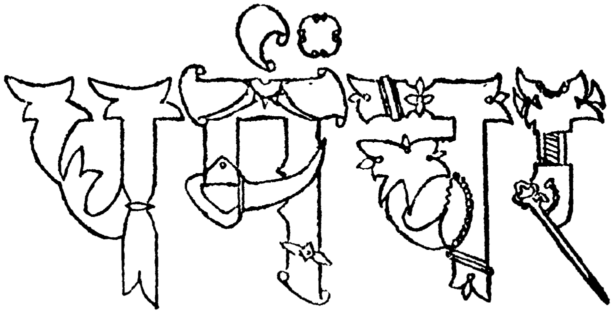
(वनस्पतियों से अक्षर रचना कला)





आग्नेय सम्पुटित आकाशीय कला

(यन्त्र प्रकार से अक्षर रचना कला)





नई भाषा बनाने की धुन—

कदाचित् १३ वर्ष की आयु में यह एक धुन हुई कि मुझे एक नई भाषा बनानी चाहिए और नया धर्म चलाना चाहिए, उस भाषा को अंग्रेज भी न समझ सकें। तब उस भाषा का नाम और लिपि निश्चित किए। भाषा का नाम अंग्रेजी के समान 'इनफ्रेडी' रखा और उसकी वर्णमाला के नाम भी अंग्रेजी के समान रखे परन्तु अंग्रेजी की वर्णमाला के नाम या वर्ण २६ हैं। मैंने उस इनफ्रेडी की वर्णमाला के नाम या वर्ण १८ ही रखे। अंग्रेजी के क्रम में ए, बी, सी, डी आदि हैं परन्तु इनफ्रेडी के क्रम में "मे, ए, डि, फि, सि, गि, लेम, रि, जि, हिल, मि, फोर, बि, टि, चर, कि, रिप्, नम्" ये १८ हैं जो कि अभी तक नहीं भूले। पाठ्य पुस्तकें (रीडरें) भी एक दो लिखी थीं जो बड़े होकर पीछे फाड़ डाली थीं। रीडरों में से एक वाक्य याद रहा "क्वील केयर टू म्वाईल=ओ आदमी कलम लाओ।"

बालकाल की एक घटना और पिता जी की मृत्यु—

लगभग १३ वर्ष की आयु में मैंने दीपावली के पर्व पर एक गुब्बारा बना कर घर में रख उस गुब्बारे के अन्दर दीपक जलाया था तो पिता जी ने 'घर पर आग लगायगा' यह कहते हुए मुझे बहुत मारा ऊपर उठा उठाकर पटका, तब हृदय से आन्तरिक दुःख में आकर मैंने कहा अच्छा मैं आगे से यह कन्दील आदि सदा के लिये बन्द करता हूं। सचमुच अगले वर्ष ठीक दीपावली पर पिता

जी का प्राणान्त हो जाने पर दीपावली का मनाना सदा के लिये बन्द हो गया। मरते समय पिता जी से पूछा गया बच्चा किस पर छोड़ा ? पिता जी ने उत्तर दिया सब अपने आप करेगा। पिता जी की मृत्यु से पूर्व मेरे सामने घर की अन्य १० मृत्युएं हो चुकीं थी, बहिन मेरे सहोदर कोई नहीं थी तीन भाई मुझसे छोटे थे जो मेरी साढ़े आठ बर्ष की आयु तक ही मर चुके थे, शेष अन्य पारिवारिक जन, पिता जी की ग्यारहवीं मृत्यु थी जो मेरे १४वें वर्ष में हुई थी। पिता जी का प्राणान्त हो जाने पर मैं अवयस्क (नाबालिग) बालक था घर की और बाहिर की सम्पत्ति की संरक्षिका (सरपरस्त) ताई थी उसका एक पुत्र मुझसे लगभग एक वर्ष बड़ा था और कन्या मुझ से छोटी थी। सम्पत्ति से मैं अनवधान रहा और मेरी उधर प्रवृत्ति भी न थी। अतः सम्पत्ति का उपभोग ताई और उसके पुत्र ने किया।

धार्मिक वृत्ति का जागरण—

उर्दू स्कूल में पढ़ते हुए जब में लगभग १२ वर्ष का था तो एक वार क्लास में पढ़ते हुए एक कविता आई थी, वह कविता उर्दू में क्या थी यह तो ज्ञात नहीं परन्तु उसका स्वरूप मेरे अन्दर अब भी अपने शब्दों में इस प्रकार बैठा हुआ है :—

बालपन खेल में खोया जवानी दुनिया-धन्धे में।
बुढ़ापा आगया हैगा मगर तू अब भी सोता है॥

उस समय हमारे शिक्षक मुंशी करीम बख्श (कौम जुलाहे)

गंगोह निवासी थे। उन्होंने समझाया था कि लड़कपन खेल-कूद में चला जाता है जवानी दुनिया के धन्धों में, बुढ़ापे में भी खुदा की वन्दगी (ईश्वर की उपासना) नहीं करता तो कब करेगा ? जवानी से ही खुदा की वन्दगी करे तो ज्यादा कबूल (अधिक स्वीकार) होती है। उसी समय क्लास में ही मेरे मन में यह विचार आया कि लड़कपन से ही खुदा की बन्दगी (ईश्वर की उपासना) करे तो उससे भी ज्यादा कबूल (अधिक स्वीकार) होगी। ऐसा प्रश्न उक्त अपने मुंशी जी से भी किया और उत्तर उनसे हां में मिला ऐसा मुझे स्मरण है, तब मैंने उसी समय क्लास में ही निश्चय किया कि मैं लड़कपन से ही खुदा की बन्दगी (ईश्वर की उपासना करूंगा) पिता जी की मृत्यु के पश्चात् ही मुझे ईश्वर की उपासना का अवसर मिला जब मैं १६ वर्ष की आयु में पहुंचा, सो कैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये यह प्रश्न था। उसी उर्दू स्कूल में पढाते हुए एक हिन्दू शिक्षक ने हमें लगभग १२ वर्ष की आयु में गायत्री मन्त्र उर्दू में लिखाया था, वह याद था, दूसरा मन्त्र एक जादू की पुस्तक से कण्ठस्थ कर लिया था, तीन मन्त्र होने चाहिए ऐसा सोचकर एक मन्त्र मैंने स्वयं घड लिया था। इन तीनों मन्त्रों के द्वारा ईश्वर की उपासना या इन मन्त्रों का जप करने लगा प्रातः ही स्नान करके। साथ ही मेस्मरेजम की पुस्तकें पढ़कर उनमें बतलाए त्राटक का अभ्यास भी करता रहा अभ्यास बढाते हुए एक दिन तो बिना पलक झपके त्राटक प्रातः ७ बजे से ३ बजे तक ८ घण्टे तक किया था। लोगों की अनेक वार्तों एवं प्रश्नों के उत्तर

भी ठीक ठीक मुख से निकलते थे । यह क्रम १८ वें वर्ष की आयु तक का था* ।

—:o:—

*१९ वें वर्ष में मैं जोधपुर चला गया वहां एक रेलवे वर्कशाप में चार आने प्रतिदिन पर कुछ कुली का कार्य किया, पुनः कुछ दिन अन्यत्र कुलियों पर टाईम कीपर १२) मासिक पर रहा पश्चात् रेल्वे ड्राईंग आफिस में ट्रेसर भी १२) मासिक पर कुछ मास रहा, वहां से फिर घर लखनोती चला आया जबकि मैं कोई २० वर्ष के लगभग का हूंगा ।

: ३ :

आर्यसमाज में प्रवेश

बालकाल में उर्दू स्कूल में पढ़ते हुए धार्मिक विचार तो मेरे हो ही गये थे यह पीछे बतला ही दिया है, अपितु विवाह कराने से भी घृणा हो गई थी। पिता जी के जीते जी तो अपने विचार प्रकट करने में सङ्कोच था किन्तु जब पिता जी का प्राणान्त हुआ जब कि मैं १४ वर्ष का था उस समय मेरी मंगनी और विवाह की सब तैयारी हो चुकी थी, पिता जी यदि डेढ़ दो मास और जीवित रह जाते तो स्यात् मैं गृहस्थ के बन्धन में बन्ध जाता पुनः मेरा क्या होता नहीं कहा जा सकता? पिता जी का प्राणान्त होते ही मैंने घोषणा कर दी कि "मैं विवाह नहीं कराऊंगा यदि पारिवारिक एवं सम्बन्धी जन मेरा विवाह कर देंगे तो मैं घर छोड़ कर निकल जाऊंगा।" बस यह समाचार वहां तक चला गया जहां विवाह-सम्बन्ध होना था फिर वह सम्बन्ध टूट गया। आर्य समाज का

संस्कार मेरे अन्दर मातुल (मामा) के सम्पर्क से आया, यद्यपि मेरे पिता जी भी आर्य समाजी थे परन्तु इसका पता उनके देहान्त के पश्चात् मुझे लगा जब कि मैं आर्य समाजी बन गया। पिता जी आर्य समाजी थे इसका पता या अनुमान निम्न बातों से हुआ—

(१) माता जी का देहान्त हो जाने पर पिता जी की आयु लगभग ३२ वर्ष की थी उन पर सम्बन्धियों और बिरादरी वालों ने दूसरा विवाह कराने का बल दिया परन्तु उन्होंने यह उत्तर देते हुए मना कर दिया कि मेरे एक ही पुत्र है बस इसका ही विवाह करना है अपना नहीं।

(२) माता जी के मरणोपरान्त वह उनका श्राद्ध (मृतक श्राद्ध) नहीं करते थे मैंने यह कहते सुना कि "मैं ऐसी बातें नहीं मानता।"

(३) उनकी मृत्यु के ७ वर्ष पश्चात् जब मैं आर्य समाजी बन गया तो घर पर पिता जी के पुस्तक संग्रह से आर्य समाज की भजन पुस्तकें तथा उर्दू में 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' और 'कुल्यात आर्य मुसाफिर' पुस्तकें मिलीं।

(४) एक ऐसा पत्र भी बहुत व्यक्तियों के हस्ताक्षरों का मिला जिसमें पिता जी के द्वारा आर्य समाज जैसी संस्था बनाने का आयोजन किया हुआ था।

(५) गंगोह आर्य समाज के प्रतिष्ठित प्रधान श्री ला० रहतुलाल जी ने मुझे बतलाया था कि तुम्हारे पिता जी हमारे आर्य समाज के सदस्य थे।

मामा जी के यहां मेरे जीवन का बहुत बाल्य काल व्यतीत हुआ, मेरा जन्म भी वहां ही हुआ था*। उनके साथ आर्य समाज के सत्सङ्गों—उत्सवों में जाता था हवन होते देखते भजन प्रवचन सुनते रहने से मेरे अन्दर आर्य समाज का संस्कार पड़गया था, परन्तु आर्यसमाज की दो बातें मुझे रुचती न थी। एक तो सब को मिलाना, दूसरी बात विना मूर्ति के ध्यान करना। अतएव मेरा विचार नया धर्म चलाने का होरहा था। जब कि मैं लगभग १५ वर्ष का था किन्तु धीरे धीरे मेरा समाधान हो गया कि सब मनुष्य समान हैं सब को धर्म के अधिकार मनुष्यता के नाते समान है क्यों किसी से घृणा करना। ध्यान भी मूर्ति पर नहीं हुआ करता मूर्ति तो दृश्य है, दृश्य का ध्यान परमात्मा का ध्यान नहीं, उसका ध्यान तो दृश्यों के ध्यान से अलग अपने आत्मा में भीतरी ध्यान है बाहिरी ध्यान नहीं। अतएव मैं आर्यसमाज के सम्बन्ध में विगतसन्देह हो गया। पुनः दैवयोग से आर्यसमाज गंगोह का वार्षिक उत्सव देखा जबकि मैं २१ वर्ष का था आज से ४५ वर्ष पूर्व की बात है, उत्सव में वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का उपदेश सुना अन्यों के भी व्याख्यान सुने कुँवर सुखलाल जी का भजन भी सुना "अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे क्यों कर रिझाऊं मैं-कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊं मैं। तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्ही फूलों में रहते हो

---

* मामा जी के दो पुत्र बाबू धर्मपाल और धर्मवीर, तथा पौत्र हरिमोहन विजयमोहन हैं जो सहारनपुर में रहते हैं।

भला भगवान् पर भगवान् को कैसे चढ़ाऊं मैं।" इत्यादि उपदेश और भजन सुनकर मन में निश्चय हुआ कि अपने यहाँ लखनोती में भी आर्यसमाज खोल देना चाहिए, सो लखनोती पहुंचते ही अपने जैसे आयु के युवकों को और कतिपय वृद्धों को साथ ले आर्यसमाज की स्थापना कर दी परन्तु मुझे ही सब ने आर्यसमाज का प्रधान बनादिया। कर्तव्यवश मुझे आर्यसमाज के कार्य की धुन होगई, साप्ताहिक सत्सङ्ग चालू कर दिए और भिन्न भिन्न पर्वों पर भी विशेष समारोह तथा प्रचार की व्यवस्था करता कराता रहा एवं वार्षिक उत्सव भी उत्तर प्रदेश-प्रतिनिधिसभा के उपदेशकों भजनोपदेशकों के द्वारा रचाया। उस समय मेरी आयु साढ़े २१ वर्ष की थी जबकि मैं आर्यसमाजी बना, मुझे उर्दू ही आती थी अतएव मैंने सन्ध्या उर्दू में याद करी थी। उर्दू में ही लेख लिखने और कविता करने की प्रवृत्ति थी। हिन्दी की वर्णमाला आती थी जिसका जन्म उर्दू स्कूल में पढ़ते हुए श्री मुंशी करीमबख्श जी से हुआ था जिनकी चर्चा पीछे कर आया हूँ। उससमय लगभग कोई १२वें वर्ष में पढ़ी हुई कुछ हिन्दी २१ वर्ष की आयु में भूल चुकी थी केवल वर्णमाला की पहिचान शेष रही थी। फिर वर्णमाला के अक्षरोंको जोड़ जोड़कर 'प,ट=पट' 'च,ट=चट' आदि कर कर हिन्दी की प्रथम पुस्तक पुनः दूसरी पुस्तक अपने आप मैंने पढ़ी, पश्चात् हिन्दी का सत्यार्थ प्रकाश आदि से अन्त तक पढ डाला, प्रथम वार बहुत कम समझ में आया फिर वार वार उसे पढता रहा कोई सात आठ वार सत्यार्थ प्रकाश पढा। इस प्रकार

हिन्दी भाषा मुझे सत्यार्थ प्रकाश से आई, किसी स्कूल में या किसी शिक्षक से हिन्दी मैंने नहीं पढी *। हाँ ! मेरे अन्दर हिन्दी का जन्म या वर्णमाला पहिचानना श्री मुंशी करीमबख्श गंगोह निवासी से हुआ। उनकी दो देन मैं मानता हूँ, एक तो धार्मिक विचार का उद्भव होना जिसकी चर्चा मैं पूर्व कर चुका हूं जो कि उर्दू की कविता पढाते हुए प्रश्नोत्तर रूप में थी। दूसरी देन हिन्दी का प्रारम्भिक ज्ञान कराने की। मैं इन दोनों बातों के लिये उनका कृतज्ञ हूँ जब कभी मैं उस ओर जाता हूँ संन्यासावस्था में भी उनके दर्शन कर अपने मस्तक को उनके प्रति झुका देता हूँ और यथासम्भव कुछ भेंट भी दे देता हूं ऐसा करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ तथा अपना कर्तव्य पूरा करता हूं।

हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश को पढते हुए तृतीय समुल्लास में जब पाठविधि पढी कि इस प्रकार पढना चाहिए और इस इस ग्रन्थ में यह यह विद्या है तो मैं उधर आकर्षित हुआ तथा मैंने दृढ सङ्कल्प किया कि इस पाठविधि के अनुसार पढना है। इसके अनन्तर श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु अपने प्रारम्भिक विद्यार्थी काल में ब्रह्मचारी वेश में घूमते हुए गंगोह से हमारे यहाँ लखनोती आए। उनसे मैंने पूछा आपने क्या पढा है तो उन्होंने कहा अष्टाध्यायी पढी है यह बतलाया, तो फिर क्या था मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे विचारों को अनुमोदन और बल प्राप्त हुआ।

---

* कुछ अंग्रेजी भी निजी रूप में (प्राईवेट) मिडल जितनी पढ़ी थी।

ब्रह्मचारी जी हमारे यहाँ कोई तीन मास रहे उनसे व्यवहारभानु कुछ सत्यार्थ प्रकाश तथा सन्धिविषय नामक वेदाङ्ग प्रकाश के कुछ स्थलों को देखने का लाभ हुआ। पुनः जब मैं २२ वर्ष का हुआ तो कहीं बाहिर जाकर संस्कृत पढने की मेरी इच्छा हुई तब मैंने गुरुकुल-कांगड़ी हरिद्वार का नाम सुना, मैं उसे देखने के लिये गया, वर्षा ऋतु में चला गया, तमेड के ऊपर बैठकर गंगा के उस पार गुरुकुल पहुंचा गंगाधारा की झालों से वस्त्र भीग गये थे वहाँ पहुंचने पर नए वस्त्र मिले। एकान्त शान्त प्रदेश में स्थित गुरुकुल और पीतवेशधारी ब्रह्मचारियों को देख मैंने अपने को ऋषि भूमि में तथा स्वर्ग में आगया ऐसा समझा। वहाँ के समस्त वातावरण के प्रति मेरी अतीव श्रद्धा हुई तपस्वी त्यागी पुण्यात्मा महात्मा मुंशीराम जी के दर्शन कर अपने को धन्य माना और उनकी सेवा में संस्कृत पढने की इच्छा भी प्रकट की परन्तु उत्तर में नियमवश उन्होंने यह कहा कि बड़ों को नहीं रखते। मैं निराश हो घर लौट आया*।

---

* गुरुकुल कांगडी से मुझे प्रेम था न जाने गुप्त प्रेम का परिणाम हुआ कि गुरुकुल वालों को भी मुझसे प्रेम हुआ जो मेरी ६५ वर्ष की आयु में (अक्तूबर १९५८ ई० को वार्षिकोत्सव पर) अपने यहां की 'विद्यामार्तण्ड' सर्वोच्च उपाधि का मुझे स्नातक बनाया।

: ४ :

गृहत्याग और संस्कृताध्ययन

संस्कृत पढ़ने की उत्कट इच्छा और आर्ष प्रणाली से अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थों को अध्ययन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये अब मुझे सर्वथा घर छोड़ के कहीं चले जाना चाहिये यह निश्चय कर लखनोती से यमुना पार हो करनाल पहुंच ट्रेन में बैठ सर्व प्रथम गुरुकुल कुरुक्षेत्र के लिये चल पड़ा, कुरुक्षेत्र नगर में सायं पहुंचा, गुरुकुल कुरुक्षेत्र का मार्ग पूछा, एक आर्य व्यक्ति मिले जिनके टेंटवे में एक छिद्र था छिद्र में एक सीटी सी लगी हुई थी जब वह व्यक्ति बोलता था तो सीटी के छिद्र पर अंगुली रख लेता था न रखने पर सीटी भी बोलने केसाथ बोलती थी। उससे गुरुकुल का मार्ग पूछ कर मैं गुरुकुल कुरुक्षेत्र पहुंच श्री पं० विष्णुमित्र जी मुख्याध्यापक से अष्टाध्यायी पढ़ने की इच्छा प्रकट की पर वहाँ प्रबन्ध न हुआ। पुनः गुरुकुल सिकन्दराबाद में पहुंच वहां के

अध्यक्ष श्री पं० मुरारीलाल जी से गुरुकुल में पढ़ने की प्रार्थना की उन्होंने कहा हां तुम पढ़ सकते हो तुम्हें हम ब्रह्मचारियों की श्रेणि में तो नहीं किन्तु उपदेशक श्रेणि में पढ़ा सकते हैं पर तुम तो अष्टाध्यायी पढ़ना चाहते हो यह हमारे यहां नहीं पढ़ाई जाती। वहां एक नयपाली ब्रह्मचारी भी शुक्रराज देखा प्रसन्नता हुई और उसे मैंने कहा था अच्छा है आप पढ़कर नयपाल में आर्य समाज का प्रचार करना, उक्त ब्रह्मचारी शुक्रराज जी विद्वान् बन कर नयपाल गये वहां आर्य समाज का प्रचार करते हुए और देशभक्ति की भावना को जनता में भरते हुए को तत्कालीन धर्मान्ध एवं सत्ता-मदान्ध महाराजा 'युद्ध शमशेर जंग बहादुर राणा' ने उसे फांसी पर चढ़ा दिया था। अस्तु। सिकन्दराबाद गुरुकुल में मेरा प्रबन्ध न हो सकने से वहां ही किसी सज्जन ने बताया कि श्री स्वामी सर्वदानन्द जी के हरद्वागंज आश्रम में अष्टाध्यायी पढ़ाई जाती है वहां जाओ। मैं उक्त आश्रम में चला गया। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी ने उत्तर दिया कि 'हमने विद्यार्थी रखने छोड़ दिये चमारों के बालक ही रखते हैं बड़ी जाति के बालक गर्वित होते हैं और तुम्हारा मस्तिष्क भी कुछ ऊंचा नहीं जंचता*। मैं स्वामी जी के इस उत्तर से निराश नहीं हुआ किन्तु वहीं पर स्वामी परमानन्द जी (मोटे और कुछ हकला कर बोलने वाले) ने कहा कि तुम मथुरा जाओ मथुरा में श्री विरजानन्द जी के शिष्य और ऋषि दयानन्द

*बचपन में ही भावी का विकास या चित्र जाना जाना दुष्कर है।
(स्वामी ब्रह्ममुनि)

के गुरु भाई पं० वनमाली दत्त जी चौबे अग्रवाल पाठशाला में पढ़ाते हैं वे तुम्हें अष्टाध्यायी पढ़ा देंगे। मैं मथुरा पहुंचा और चौबे जी के दर्शन कर उनसे अष्टाध्यायी पढ़ाने की प्रार्थना की, प्रार्थना स्वीकार हुई मैं उनसे पढ़ने लगा।

चौबे जी ने अष्टाध्यायी पढ़ाते हुए प्रसङ्गतः श्री विरजानन्द जी की दो बातें बतलाईं। एक तो आर्ष ग्रन्थों पर उनकी श्रद्धा थी विशेषतः वेदों पर अत्यधिक, वे पुराणों को नहीं मानते थे और न्याय दर्शन उनको रुचता नहीं था न्याय दर्शन झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा युक्ति-बल से सिद्ध कर देता है। दूसरी बात यह बतलाई जब विरजानन्द जी का प्राणान्त होने लगा तो हम सब विद्यार्थी रोने लगे तो विरजानन्द जी ने पूछा क्यों रोते हो? तो हमने कहा हमें अष्टाध्यायी कौन पढ़ायगा? तब गुरु विरजानन्द जी ने अष्टाध्यायी हाथ में लेकर कहा कि मैं मरता नहीं इस अष्टाध्यायी के अन्दर जाता हूं तुम इस अष्टाध्यायी से ही पूछना पढ़ना। चौबे जी ऋषि दयानन्द जी का मान करते थे और मान के कारण उनका नाम नहीं लेते थे किन्तु छोटे स्वामी जी कहकर उनकी चर्चा किया करते थे और विरजानन्द जी को बड़े स्वामी जी बोला करते थे। हमने कहा गुरु जी स्वामी दयानन्द जी तो ऋषि थे तो वे उत्तर देते थे हाँ बेटा! वे ऋषि थे हमने तो कुछ न किया। वे यह भी बतलाते थे कि मुझे १५) मासिक अष्टाध्यायी पढाने को भेजा करते थे और कहा करते थे कि देखो शास्त्रार्थ क्षेत्र में हमारे सामने न आना, कभी शङ्का हो

तो हमसे अलग समाधान करा लिया करना। चौबे जी से पढ़ते समय एक बार कुछ एमरीकन सज्जन गुरु जी से मिलने मथुरा आकर अद्भुतालय में ठहरे और गुरु जी के लिवा लेने के लिये बग्घी भेजी थी उन्होंने विरजानन्द जी के पढ़ाने की शैली और दिनचर्या आदि को पूछा था वे चाहते थे ऐसा विद्यालय एमेरीका में स्थापित करें जहाँ से दयानन्द जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् विद्यार्थी पढ़कर निकलें। वे एमेरीकनजन पुनः पं० भीमसेन जी के पास कलकत्ते भी गये थे ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में जानकारी करने के लिये। अस्तु !

श्री चौबे जी मुझे केवल बीस पच्चीस सूत्रों के हिन्दी में अर्थ प्रायः आधे घन्टे तक पढ़ाया करते थे, मैं उस पाठ को अधिक से अधिक घण्टे भर में तैयार कर लेता था दिन भर खाली रहता मन न लगता था, सोचता था घर से निकला था अधिक पढ़ने, पर यहाँ तो बहुत थोड़ी पढ़ाई होती है क्योंकि अन्य बड़े विद्यार्थी अधिक समय ले लेते थे। अतः मुझे क्या करना चाहिये इसी में निराश सा रहता था तब चौबे जी से लगभग पौने दो मास में अष्टाध्यायी के पौने दो अध्यायों के हिन्दी में अर्थ मैंने पढ़े थे कि दैवयोग से ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त जी * का पत्र साथ मनिआर्डर के आगया कि तुम तुरन्त डलमऊ (जि० रायबरेली) पहुंचो तुम्हारी यहाँ पढ़ाई की व्यवस्था हो जावेगी यदि तुम नहीं पहुंचे तो न जाने मेरी क्या स्थिति होगी ? घर पर मेरी धार्मिक वृत्ति को

* वर्तमान श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

देखकर ब्रह्मचारी जी को मुझसे अधिक स्नेह होगया था। उन दिनों श्री चौबे जी के पास ब्रह्मचारी विद्याव्रत जी (वर्तमान स्वामी आनन्द प्रकाश जी महाविद्यालय ज्वालापुर) भी पढते थे, उन्होंने भी चले जाने को प्रेरित किया। मैं मथुरा से डलमऊ पहुंच गया वहां नगर से बाहिर एक उद्यान एवं गोशाला थी जहाँ उक्त ब्रह्मचारी जी रहा करते थे मैं ब्रह्मचारी जी से मिला और उनके गुरु श्री स्वामी पूर्णानन्द जी के दर्शन कर उन्हें सादर प्रणाम किया पुनः वार्तालाप के अनन्तर स्वामी जी महाराज ने मुझे अपना शिष्य बनाना निश्चय किया। वस्तुतः विचार तो किया हुआ यह था कि एक विद्यालय खोला जावेगा जिसमें ब्र० ब्रह्मदत्त जी आचार्य बनेंगे और स्वामी जी महाराज विद्यालय के कुलपति रहेंगे। परन्तु मेरे साथ वार्तालाप करके उक्त विचार स्वामी जी का बदल गया और कहा कि इसे मैं पढाऊंगा सो मैं स्वामी जी का शिष्य बन गया वे मेरे गुरु होगए मेरा उनसे अष्टाध्यायी पढना आरम्भ हो गया। में पढता था और स्वामी जी महाराज मुझे पढाते थे। आश्चर्य की बात है स्वामी जी महाराज अष्टाध्यायी संस्कृत में ही पढाया करते थे संस्कृत में बोलना ही उनका व्रत था, मैं संस्कृत में पढाए पाठ को कुछ समझता था कुछ न समझता था पश्चात् ब्र० ब्रह्मदत्त जी से पाठ विचरवाता था और पं० जीवाराम जी के हिन्दी भाष्य अष्टाध्यायी से पाठ तैयार किया करता था, पं० जीवाराम जी के भाष्य से मुझे पर्याप्त महायता मिली थी।

स्वामी जी मुझे पढाते थे मैं पढता था और ब्र० ब्रह्मदत्त जी

को ऊपर के कार्य करने पडते थे, ऊपर के कार्यों में भूल होने की सम्भावना थी अत: ब्र० ब्रह्मदत्त जी पर भूल हो जाने के कारण मार पडती थी यह बड़े दु:ख की बात थी इसी दु:ख संकट में अपनी सान्त्वना के लिये ब्रह्मचारी जी ने मुझे अपने पास मथुरा से बुलाया था यह उन्होंने अपने शब्दों में एक वार प्रकट भी किया था। जब भूल के कारण ब्रह्मचारी जी पर मार पडती थी तो पाठ मेरा बन्द होजाता था स्वामी जी के रुष्ट और क्रोधाविष्ट होजाने से। एक बार तो स्वामी जी ने ब्रह्मचारी जी को नंगा करके लंगोटी तक उतरवाकर बुरी तरह मारा ब्रह्मचारी जी आगे हाथ रखकर वहाँ से भाग निकले पश्चात् स्वामी जी ने मुझे कहा अरे जा उसे मना ला मेरी वर्षों की कमाई है, श्री स्वामी जी संन्यास से पूर्व जालन्धर आर्य स्कूल में पढाते थे उनका उस समय नाम मास्टर सुखदयाल जी था और ब्र० ब्रह्मदत्त जी उसी स्कूल में उनके विद्यार्थी थे तथा ब्रह्मचारी जी लुध्याना के (आस पास के) निवासी और सारस्वत ब्राह्मण थे ऐसा स्वयं ब्रह्मचारी जी ने मुझे बतलाया था। ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त जी गुरु के भक्त और अतिकृतज्ञ थे जो वार वार गुरु की मार सहते रहे और गुरु की मार ताड से ११ वार तक भागकर पुन: पुन: गुरु के मनाने पर साथ हो जाते रहे। अन्तिम १२ वीं वार भागकर फिर गुरु जी के साथ नहीं गए, यद्यपि ग्राम अरण्या (जि० बुलन्दशहर) में स्वामी जी आए और ब्रह्मचारी जी को साथ ले जाना चाहा मारा भी बहुत परन्तु ग्राम वालों ने उनसे छुडाकर स्वामी जी को भगा दिया। यह सब वृत्तान्त ब्रह्मचारी जी

ने स्वयं मुझे बतलाया था जब कि ग्राम अरण्या में मुझे तीतरों (जि० सहारनपुर) से अपने मिलने को बुलाया था। यह वृत्तान्त आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व का है जबकि मेरी आयु कोई २५ वर्ष की थी।

अध्ययनकाल में रोटी की भिक्षा मांगने का सर्वप्रथम अवसर मुझे डलमऊ नगर में हुआ श्री स्वामी पूर्णानन्द जी के आदेश से। मुझे रोटी की भिक्षा मांगने में सङ्कोच था ब्र० ब्रह्मदत्त जी को मेरे साथ कर दिया जाओ इससे रोटी की भिक्षा मंगवाओ मैं भिक्षा मांगने चला गृहस्थ के द्वार पर पहुंचा उस समय मेरे अन्दर बहुत कुछ उथल पुथल और सङ्कोच था दूसरों को सदावर्त देने वाले घर का बालक आज दूसरों से रोटी की भिक्षा मांग रहा है। परन्तु गुरु का आदेश था ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना था विद्या पढनी थी भिक्षा मांगी। डलमऊ रहते हुए स्यात् मास भर हुआ होगा वहाँ से स्वामी जी हम दोनों को साथ ले देहरादून डी०ए०वी० कालिज में पहुंचे वहाँ एक महानुभाव श्रीमान् जी नाम से प्रसिद्ध थे उनके अतिथि बने पुनः पंजाब की यात्रा पर अम्बाला से पैदल निकल पड़े भिक्षा मांगते पढते पढाते हुए रोपड, पठानकोट, सुजानपुर पहुंचे। सुजानपुर में रावी की नहर जल से आपूर भरपूर थी स्वामी जी ने मुझे तैरना सिखाने के लिये भरी नहर में कूद जाने का आदेश दिया गुरु वचन से मैं कूद पड़ा तैरना न आने से मैं डूब गया हाथ बाहिर निकाले हुए थे स्वामी जी ने मेरा हाथ अपने एक हाथ से पकड खींचने लगे और किनारे पर लाने लगे पर

धारा का वेग बडा था अकेले मुझे सम्भालने में असमर्थ थे ब्रह्मचारी जी भिक्षा माँगने नगर में गए हुए थे दैवयोग से वे भिक्षा लेकर आ ही पहुंचे थे स्वामी जी ने तुरन्त उन्हें भी मुझे पकडने को कहा वह भी कूद पड़े दौनों ने मुझे किनारे पर ला बाहिर निकाल लिया, मैं बच गया। पुनः पैदल बिलासपुर (कांगड़ा), ज्वालामुखी, पठानकोट, जम्मु, नूरपुर और उससे कुछ आगे तक भ्रमणकर खन्नासे रेलद्वारा पुनः देहरादून आर्यसमाज में आ ठहरे देहरादून पहुंचने पर स्वामी जी और ब्र० ब्रह्मदत्त जी दोनों ही रोगी पड़ गए, इन दोनों की मुझे सेवा करनी पड़ती थी। मेरा सारा समय सेवा में ही व्यतीत होता था स्वामी जी की टट्टियां तक उठाता था पढ़ने की तो कथा ही क्या स्नान और सन्ध्या करने तक का भी अवसर न मिलता था भोजन भी अशान्ति से ही करपाता था। ऐसी कष्टकथा और मेरी दशा लगभग तीन मास तक रही, ऐसी स्थिति के अन्तिम दिनों में स्वामी जी की छोटी बहिन सुनीति अपने बच्चों सहित देहरादून आर्यसमाज में अकस्मात् आठहरी, इन्हीं दिनों में एक बार स्वामीजी बहुत क्रुद्ध हो गए और कह उठे कि मेरे सम्बन्ध में कोई कुछ न करे। प्रतिदिन सामने दुहाकर गौ का दूध लाने का मुझे आदेश दिया हुआ था मैं लाया करता था उस दिन मैं चिन्ता में पड़ा कि मैं क्या करूं दूध लाऊं या नहीं ? लाऊं तो स्वामी जी अप्रसन्न होंगे न लाऊं तो स्वामी जी क्या पीएंगे ? मैंने उनकी बहिन सुनीति से पूछा बहिन जी ! स्वामी जी ने अपने सम्बन्ध में कुछ न करने

को कह दिया, मैं क्या करूं उनके लिये दूध लाऊं या नहीं ? बस इतना ही मैं कह पाया था कि तुरन्त स्वामीजी महाराज को कमरे से बाहिर आ अपने दोनों हाथों में लट्ठ ऊपर को उठाए हुए मैंने देखा आगे मुझे कुछ पता नहीं उन्होंने क्या किया, हां ! कुछ देर पीछे मैंने देखा कि मैं बरामदे में गिरा पड़ा हूं मेरे वस्त्र रक्तमय (खून में तर) हुए हुए हैं स्वामी जी की बहिन कुछ कोयला आदिसा मेरे शिर के घाव में भर रही हैं और मेरी आंखें खुलने पर मुझे कह रही हैं अरे जाओ यहां से कहीं अन्यत्र स्थान पर पढ़ो यहां क्या रखा है । अस्तु !

मेरे शिर पर स्वामी जी ने लट्ठ मार दिया था मैं उसके आघात से मूर्छित हो गया था, शिर के बीच में लट्ठ नही पड़ सका अन्यथा शिर फूटकर मेरा जीवन तभी समाप्त हो जाता किन्तु शिर की एक ओर कान से कुछ ऊपर ही चोट आई थी जिसका चिह्न आज तक भी बना हुआ है । घाव उपचार से भरने लगा तो कुछ दिन पश्चात् स्वामी जी ने मुझ से कहा कि तुम्हारा सङ्कल्प था कि जो मुझे पढ़ाकर विद्वान् बना देगा तो उसे अपनी सारी सम्पत्ति दे दूंगा सो तुम अभी हमारे नाम करदो हम इधर उधर घूमते हैं विद्यालय खोलकर बैठेंगे । मैंने इसे स्वीकार किया इसलिये कि स्वामी जी के पास मेरी पढ़ाई नही होती थी । मैं स्वामी जी के साथ ८ मास रहा प्रथम ५ मास पढ़ाई हुई थी वह भी निरन्तर नहीं विघ्नबाधा के साथ एक दिन पढ़ाई दो दिन बन्द दो दिन पढ़ाई तो तीन दिन बन्द, क्योंकि स्वामी जी का स्वभाव अति क्रोध का था

विशेषतः ब्र० ब्रह्मदत्त जी पर क्रोध निकालते और पाठ मेरा बन्द हो जाता था, पिछले तीन मासों में तो दोनोंके ब्र०ब्रह्मदत्त और स्वामीजी के विशेष रोगी हो जाने पर एक दिन भी पढ़ाई नहीं हुई। तब मन खिन्न रहता था, स्वामी जी का सङ्ग कैसे छोड़ूं इसका उपाय सामने न आता था। जब स्वामी जी ने मेरी सम्पत्ति मांगी तो मैंने समझा कि स्वामी जी के सङ्ग छोड़ने का उपाय यही है कि स्वामी जी के नाम गुरुदक्षिणा में अपनी सम्पत्ति भेंट देकर इनके पास से चल-पड़ो बस स्वामी जी सन्तुष्ट हो जावेंगे वह यह नहीं कहेंगे हमारे पास से पढ़कर चला गया हमारे साथ धोखा किया क्योंकि गुरु-दक्षिणा में सम्पत्ति दे गया। मैंने अपने यहां पहुंचकर पटवारी को बुला सारी सम्पत्ति का विवरण लिखवा नकुड तहसील में तहसील-दार के सम्मुख सारी सम्पत्ति भूमि बाग और मकान स्वामी जी के नाम रजिस्टरी करा दिए, पुनः हम सब गंगोह आर्यसमाज में आ ठहरे।

स्वामी जी का सङ्ग छोड़कर अन्यत्र चल पड़ना—

एक दिन प्रातः से पूर्व ही मैं स्वामी जी के पास से भाग निकला और नानोता स्टेशन से ग्वालियर का टिकिट लेकर रेल में बैठ गया, ग्वालियर का टिकिट इसलिये लिया कि किसी राज्य में चले जाने पर ही स्वामी जी से बच सकूंगा और पढ़ सकूंगा। मार्ग में से स्वामी जी के नाम एक पत्र विना अपने पते का भेज दिया जिसमें लिख दिया था कि मैं आपके पास से सर्वथा के लिये अलग हो रहा हूं कारण कि मैं घर से पढ़ने के लिये निकला

था आपके पास मेरी निरन्तर पढ़ाई नहीं हो रही थी अब फिर भूमि की व्यवस्था करने का भार भी आपने मुझ पर डाल दिया था, मैं तो घर पर भी इस कार्य में रुचि नहीं रखता था ताऊ जी के पुत्र (बड़े भाई) पर सब प्रबन्ध छोड़ा हुआ था। आप मेरे अलग होने से दुःखी न होना और न मुझ पर अप्रसन्न होना कि मैंने आपके साथ कोई धोखा किया है। आप संन्यासी हैं संसार का उपकार करना आपका कार्य है मुझ पर पढ़ाने का उपकार किया है मैं भी संसार में एक व्यक्ति था आप दुःख न मानना किन्तु प्रत्युपकाररूप में या प्रतीकाररूप में अपनी सम्पत्ति गुरुदक्षिणा में भेंट कर चुका हूं।

मैं रेल में सवार था, जबकि आगरा केण्ट स्टेशन के निकट गाडी पहुंची तो एक पुरुष ने मुझे पूछा कहां जा रहे हो? मैंने उत्तर दिया ग्वालियर, पुनः प्रश्नकर्ता ने पूछा क्यों? मैंने उत्तर दिया संस्कृत पढने। तब वे बोले यहां आगरा नामनेर (छावनी) में भी विद्यालय (मुसाफिर विद्यालय) है यहां उतर जाओ यहां पढलो। मैं यह सुनकर आगरा केण्ट उतर गया और उक्त मुसाफिर विद्यालय में आ ठहरा विद्यालय के अध्यक्ष श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी और श्री तारादत्त जी वकील से मिला और आगे अष्टाध्यायी पढने की इच्छा प्रकट की उन्होंने अष्टाध्यायी पढाने का प्रबन्ध कर देने का आश्वासन दिया अतः में वहां ठहर गया साथ ही स्वामी जी के साथ रहने और उनके पास से भाग निकलने का सारा वृत्तान्त भी सुनादिया इस लिये कि कभी स्वामी जी मुझे खोजते खोजते इधर आनिकलें तो मेरा पता न देना नहीं तो मार मारकर

साथ लेजावेंगे या मारते मारते दम निकालदेंगे । परन्तु दो चार दिन ही बीते थे कि विद्यालय के अध्यक्ष श्री तारादत्त जी वकील ने कहा अरे वह तुम्हारे स्वामी जी आपहुंचे, बस इतना सुनना था कि भय के कारण मेरा श्वास ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे रह गया, मैं स्तब्ध होगया। धैर्य धारण करके मैंने अध्यक्ष जी से कहा आप मुझे उनके साथ न भेजना नहीं तो वधक (कसाई) के हाथ में गौ पकडा देने जैसा पाप आपको लगेगा। अध्यक्ष जी ने कहा ऐसा नहीं करेंगे, हम तुम्हें उनके साथ न भेजेंगे। मुझे सन्तोष हुआ। विद्यालय में मेरे पास स्वामी जी ब्र० ब्रह्मदत्त जी को साथ ले आपहुंचे, मैंने चरण छूकर प्रणाम तो किया पर हृदय में भारी भय था स्वामी जी ने पूछा क्यों भाग आया ? मैंने उत्तर दिया कि इस विषय में मैंने पत्र भेज दिया था कारण उस में लिख दिए थे। स्वामी जी ने कहा हमने वह पत्र फाड़ फैंका है अब बतला क्यों भाग आया ? मैंने नम्रता से कहा स्वामी जी पुनः चर्चा करना-लडना तो नहीं, बस मुझे आपके साथ अब नहीं जाना। विद्यालय के अध्यक्ष ने भी उन से कहा जब यह साथ जाना नहीं चाहता तो आप इसे छोड़ें। अस्तु। स्वामी जी महाराज वहां से चले गए और स्वामी जी महाराज का वह मिलन एवं दर्शन मेरे लिये अन्तिम था, यद्यपि कुछ योग्य होजाने पर गुरु जी के दर्शन की आकांक्षा तो हुई कि अब मुझे देख स्वामी जी के हृदय को शान्ति मिले और मुझे उनका आशीर्वाद

प्राप्त हो, परन्तु मेरी आकांक्षा पूरी न हुई *। इस प्रकार स्वामी जी के सङ्ग छोडने या उनके पास से भाग आने का बस मेरा यह प्रथम और अन्तिम अवसर था, दैव इच्छा।

मैं मुसाफिर विद्यालय आगरा में रह गया परन्तु अष्टाध्यायी पढने का प्रबन्ध न हो सका। जो पण्डित जी वहां संस्कृत पढाने आते थे वह तो लघुकौमुदी पढाते थे अष्टाध्यायी नहीं पढासके। तब मैंने अपने पढने का कार्य अपने आप ही पढना आरम्भ कर दिया। श्री स्वामी पूर्णानन्द जी के सङ्ग आठ मास रहने पर पांच मास की पढाई में भी दो अढाई मास जितनी ही पढाई हुई थी. शेष पढाई मैंने स्वयं ही काशिका और ऋषि दयानन्दकृत वेदाङ्ग-प्रकाशों की सहायता से करी पुनः सारी द्वितीयानुवृत्ति भी काशिका से स्वयं करी। दैवयोग से विद्यालय के एक दो विद्यार्थी और अष्टाध्यायीप्रेमी एक निकटस्थ वृद्ध जन भी मुझ से अष्टाध्यायी पढने लगे एवं धीरे धीरे विद्यालय के सारे विद्यार्थी उक्त पण्डित जी से लघुकौमुदी पढना छोडकर मुझ से अष्टाध्यायी पढने लगे। इस प्रकार पण्डित जी से पढना बन्द हो जाने पर उन्हें विद्यालय से मुक्त कर दिया गया।

मुसाफिर विद्यालय में रहते हुए मुझे फारसी में सर्फमीर, नहवमीर, मीजान, मुंशेव, पंजगंज और कुछ अर्बी भी पढनी पडी

---

* श्री पं० ब्रह्मदत्त जी से सुना था कि स्वामी जी स्वयं अपनी अन्त्येष्टि रचकर अग्नि में कूद जल मरे। सम्भवत: क्रोध की अति-मात्रा का परिणाम यह आत्महत्या हो।

थी परन्तु जैसे ही उस विद्यालय को छोडा फिर उनका एक अक्षर भी नहीं देखा क्योंकि उधर मेरी रुचि न थी। मेरे समय विद्यालय में कई विद्यार्थी थे उन में से दो चार के नाम मुझे स्मरण हैं, जैसे भवेशचन्द्र, रामचन्द्र आर्य मुसाफिर, ठाकुर अमर सिंह (महोपदेशक), कुँवर सुखलाल थे तथा केदारनाथ जी (राहुलसांकृत्यायन), मौलवी महेश प्रसाद जी को भी वहां देखा है कदाचित् वहां के स्नातकरूप में थे अकस्मात् आए हुए हों। उक्त विद्यालय में मैं आठ मास रहा, वहां रहते हुए एक वार अध्यक्ष महोदय ने प्रचारार्थ मुझे फतेहाबाद (जि० आगरा) में भेजा था, मुसाफिर विद्यालय छोडते हुए मेरे सम्मुख प्रश्न था कि मैं कहां जाऊं ? मन में आया चलो फतेहाबाद। मैं फतेहाबाद आकर आर्यसमाज में ठहर गया और घरों में एक एक रोटी की भिक्षा मांग खाता और अष्टाध्यायी पढता पढाता रहता था। स्थानीय आर्यसमाज के प्रधान श्री ज्वाला प्रसाद जी बैंकर ने मुझे कहा कि हमारी धर्मपत्नी को संस्कृत पढा दिया करें। मुझे दुनियादारी का बोध न था तेईस चौबीस वर्ष के मध्य में मेरी आयु थी मैंने समझा बडा अच्छा हुआ स्त्रियों में भी आर्ष पाठविधि के प्रचार का अवसर मिला, यह सोच उन्हें माता मान कर पढाना आरम्भ कर दिया। प्रथम साधारण संस्कृत पढाकर फिर अष्टाध्यायी पढानी आरम्भ करदी जबकि अष्टाध्यायी लगभग आधी पढादी तो इन्फ्लुएन्जा रोग आया उस में मैं, माता जी और उनका पन्द्रह वर्षीय पुत्र दीन दयाल* रोगी पड गए। मैं और उनका पुत्र तो रोग से मुक्त

*जो आज डा० डी.डी.सोनी के नाम से प्रसिद्ध वेदों के अच्छे विचारक हैं।

होगए परन्तु माता जी का प्राणान्त होगया। माता जी के देहान्त होजाने पर मैं फतेहाबाद से चलपडा।

पञ्जाब की ओर प्रस्थान वन जङ्गल में पैदल भ्रमण—

फतेहाबाद (आगरा) से जालन्धर आया वहां से पैदल होश्यारपुर, ऊना, रिवालसर पहुंचा। रिवालसर में तीन चार पर्वत भाग झील में तैरते देखे। पश्चात् मण्डी, पालमपुर, धर्मशाला नगर पहुंचकर पुनः उसी प्रकार पैदल ही पठानकोट आया। यह सब यात्रा अकेले पर्वतों, बन-जंगलों में घूमते ठहरते हुए की। कई बार जंगली जन्तुओं को भी देखने उनके सामने आने का प्रसंग हुआ, धर्मशाला से पठानकोट आते हुए मार्ग में एकचित्र चिह्नों वाला कुत्ते के बराबर सड़क सूंघते हुए मेरे सामने जन्तु आ रहा था, मेरे पास दण्डा और लोटा था मैं दण्डे से लोटे को बजाता हुआ उस जन्तु की ओर ही भाग पड़ा वह जन्तु खड़के से डर कर भाग गया। ऐसे ही एक बार पहल गांव (कश्मीर) भी प्रातः ही वहां से कुछ दूर बर्फ वाली नदी पर अकेले स्नान करते हुए पर्वत पर से नदी की ओर आते हुए श्वेत रंग वाले मोटे कुत्ते से बड़े जन्तु को देखा था, इसी प्रकार अन्यत्र लकड़बग्गे को भी रात में देखा था।

फतेहाबाद (जि० आगरा) रहते हुए भी एक बार फतेहाबाद से झांसी तक की यात्रा पैदल की थी चम्बल पार करते ही सायंकाल हो गया, सड़क बन रही थी ठेकेदार एक मुसलमान काजी नाम से पुकारा जाता था रात्रि को उनके पास ठहर गया वह सड़क पर ही

कई कर्मचारियों के साथ सड़क से मिली हुई एक कोठड़ी में रहता था, काजी सुरापान करता था सुरा के मद (नशे) में आ सोने के समय मुझ से झगड़ने लगा मुझे आर्य समाजी जानकर, आर्य समाज और ऋषि दयानन्द को अनेक अपशब्द कहने लगा और सोने न दे वार वार आवेश में आवे . नौकर भी मुसलमान थे केवल एक नौकर हिन्दू था। मैं उस अशान्त स्थान से रात के ११ बजे चल पड़ा उस हिन्दू नौकर के यह कहते हुए भी कि चम्बल का बेहड़ होने से मार्ग में जगली जन्तु का भय है। चार पांच मील जाकर कुत्तों के भोंकने की आवाज सुनाई पड़ी मैं ग्राम समझ सड़क छोड़ उधर होलिया. वह ग्राम न था किसी किसान का बाड़ा था आगे न वढ़ा कोई मुझे चोर न समझे बाड़े से बाहिर ही एक लक्कड़ पर शेष रात्रि निकाली वर्षा ऋतु के दिन थे मच्छर भी खूब लगे। ऐसे ही कई रातों में यात्रा भी की स्यात् मार्ग में चोर भी मिले पर पास कुछ न देख कुछ न कह सके*। झांसी से पहिले ललितपुर के आस पास एक लम्बा जंगल मिला जहां बोर्ड पर लिखा था 'होश्यारी से चलो' वहां भी अकेला घूमा और एक

* एक वार फतेहाबाद रहते हुए रात को ३ बजे आर्य समाज में मेरे पास चोर आया मैं अकेला सो रहा था मुझे सोते हुए स्वतः ध्यान आया कि कोई दूसरा व्यक्ति यहां है आंख खुल गई, देखा कि चोर सामने खड़ा है मैंने कहा कौन है वह न बोला फ़िर उठते हुए मैंने कहा तुझे पता नही यहां विद्यार्थी रहते है यह सुन वह चला गया।

दिन वहां के ग्राम में भिक्षा मांगने पर भोजन न मिला कच्चे चने ही मिले भूख में उन्हें ही खागया और रात्रि को ग्राम से बाहिर एक पत्थर पर सो रहा,* रात्रि में एक प्रहरी घूमते हुए आया उसने जगाकर पूछा यहां किसके हुकम से सोया है! मैंने कहा अरे भाई! ग्राम से बाहिर भी क्या किसी के हुकम की आवश्यकता है? उसने कहा यहां रात्रि में जङ्गली जन्तु आजाते हैं।+

प्यारेलाल नाम से प्रियरत्न नाम रखा जाना—

पंजाब की यह प्रथम यात्रा कर मैं फिर 'तीतरों' (जि० सहारनपुर) आकर ठहरा यहाँ एक आर्यसज्जन शीतलप्रसाद को मैंने छः मास में अष्टाध्यायी पढ़ाई थी यहां पर ही प्यारे लाल नाम का शोधन कर अपना 'प्रियरत्न' नाम मैंने रखा था और यहां पर ही ब्रह्मचारी व्यासदेव अमृतसर से मेरे पास अष्टाध्यायी पढ़ने आए थे। मैं वहां अपने सभी विद्यार्थियों को योगमार्ग में चलाता था। ब्र० व्यासदेव को भी मैंने भित्ति (दीवार) पर चिपका कर श्वेत कागज पर बनाए हुए रुपये के बराबर गोल काले चिह्न पर त्राटक कराया था। व्यासदेव की प्रवृत्ति योग में उसी समय से अच्छी थी वह त्राटक करते हुए कहा करते थे कि मुझे इस काले गोल चिह्न के अन्दर अन्य वस्तुएं भी दीखती हैं। आज वही ब्र० व्यासदेव ऊंचे योगाभ्यासी योगाचार्य के रूप में प्रसिद्ध

---

* मैं यात्रा में ग्राम नगर के बाहिर ही ठहरता और सोता था।

\+ एक वार कश्मीर यात्रा भी पैदल की थी जिसका वर्णन प्रसंगतः आगे आवेगा।

होगए यह हर्ष की बात है*। उस समय जबकि मैं 'तीतरों' था मेरी आयु लगभग २६ बर्ष की थी और ब्र० व्यासदेव जी की आयु अनुमानतः १८ या २० वर्ष की थी। तीतरों रहते हुए श्री ब्र० ब्रह्मदत्त जी (वर्तमान पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु) ने मुझे अरण्या ग्राम (जि० बुलन्दशहर) से पत्र लिखा था कि "मैं रोगी हूं मुझे मिल जाओ हम दोनों मिल कर कार्य करेंगे।" मैं ब्र० ब्रह्मदत्त जी को मिलने अरण्या ग्राम गया था उन्होंने गुरुजी (स्वामी पूर्णानन्द जी) के अरण्या में पहुंच जाने और उनके द्वारा अपने पर की गई मारपीट का वृत्तान्त भी सुनाया था मैंने सान्त्वना दी थी।

महाभाष्य व्याकरण के अध्ययनार्थ काशी जाना—

तीतरों से मैं बनारस महाभाष्य व्याकरण पढ़ने को चला गया। बनारस के सम्बन्ध में सुना था कि वहां आर्य समाजी विद्यार्थी को झूठ बोलकर और अपने को छिपाकर पढ़ना तथा क्षेत्रों में रहना पड़ता है सीताराम सीताराम करना मन्दिर में घण्टा बजाना मस्तक आदि अंगों पर भांति भांति के तिलक छाप लगाना होता है। यह सुनकर मैंने निश्चय किया था कि मैं झूठ नहीं बोलूंगा जब मूल में ही पाप होगा तब आगे मेरा क्या बनेगा अतएव मैं न क्षेत्रों में रहूँगा न क्षेत्रों में रोटी खाऊंगा। अतः मैं काशी आर्य समाज में जा ठहरा और आर्य घरों में से एक एक

---

* उक्त ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश स्वर्ग आश्रम में योग का शिविर लगाते हैं बम्बई कलकत्ते के अनेक धनी मानी जन इनके भक्त और शिष्य हैं, महात्मा आनन्द स्वामी जी भी इनके शिष्य हैं।

रोटी की भिक्षा मांग खाकर वहां अध्ययन करता रहा, यदि किसी पण्डित ने पूछा आर्य समाजी हो, तो मैं कह दिया करता था कि हां ! मैं आर्य विद्यार्थी हूं। एक विद्वान् के पास मैंने पढ़ने (कदाचित् मीमांसा पढ़ने) की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने पूछा आर्य समाजी हो ? तो "मैं आर्य विद्यार्थी हूं" ऐसा उत्तर देने पर उन्होंने पढ़ाने से इन्कार कर दिया था। अस्तु। काशी में श्री पं० देव नारायण जी तिवारी बड़े प्रसिद्ध वैयाकरण थे 'तिवारी जी' नाम से बोले जाते थे, उन से लगभग पौनभाग (तीन चौथाई) महाभाष्य व्याकरण मैंने पढ़ा। पण्डित तिवारी जी मुझ पर प्रसन्न थे, कोई कोई उन से मेरी शिकायत करता था कि यह आर्य समाजी है तो वह कह दिया करते थे कि अच्छा है आर्य समाजी है तो सन्ध्या करके आता होगा। सिद्धान्तकौमुदी पढ़ाते हुए कभी कभी अनुवृत्ति की टटोल में जब तिवारी जी पड़ जाते थे तो मैं कह उठता था कि अमुक सूत्र से अनुवृत्ति आती है तो वे अति प्रसन्न हो जाते थे। कभी कभी सिद्धान्त कौमुदी पढ़ाते हुए श्री विरजानन्द जी की प्रशंसा करने लगते थे 'अच्छा हुआ विरजानन्द जी ने सिद्धान्त कौमुदी पर जूते लगवाए, पुराणों में आए अशुद्ध प्रयोग पर फक्किका घड़ दी यह नहीं कह दिया कि पुराण का प्रयोग अशुद्ध है व्यर्थ अनार्ष भार बढ़ाया तभी तो विरजानन्द जी ने जूते लगवाए।

महाभाष्य व्याकरण से अतिरिक्त अध्ययन—

काशी वेदविद्यालय में श्री पं० धुण्डिराज जी शास्त्री, दाक्षि-

गण्य विद्वान से न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य लगभग पौन और पिङ्गल छन्दः शास्त्र पूर्ण पढ़ा था। उस समय महात्मा गान्धी का ब्रिटिश गवर्नमेंएट के साथ असहयोग आन्दोलन बल पकड़ रहा था सर्वत्र पठन पाठन बन्द हो गया था अतः मैं काशी से चला आया तब मैं काशी में केवल ६ मास ही पढ़ सका। इतने काल में पौन महाभाष्यव्याकरण पौन न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्यसहित और पूर्ण पिङ्गलछन्द पढ़ सका। अपने उक्त पढ़ने के साथ साथ काशी में किन्हीं को अष्टाध्यायी पढ़ाता भी रहा जिन्होंने कि मेरी प्रेरणा से कौमुदी पढ़ना छोड़ दिया था उन्हें अष्टाध्यायी पढ़ लेने से अष्टाध्यायी पर महती श्रद्धा हो गई थी।

कश्मीर पदयात्रा—

काशी में महभाष्य आदि पढ़ लेने के अनन्तर कश्मीर जाने का विचार हुआ। जम्मु तक रेल में गया पुनः वहां से एकाकी ही पैदल कश्मीर के लिये चल पड़ा, कश्मीर के लिये मेरी यह प्रथम बार यात्रा थी, आधे चैत्र ही प्रस्थान कर दिया जबकि कश्मीर जाने का मार्ग भी न खुला था रस्तों पर बर्फ पड़े रहने से। तिस पर मैं चार वर्ष से शरीर के ऊपर कुरता भी न पहिनता था, केवल धोती का आधा टुकड़ा नीचे पहिनता और आधा टुकड़ा ऊपर ओढ़ता था। नीचे बिस्तर और कम्बल भी न रखता था, न ही पैरों में जूता चप्पल खड़ाऊं थी और न शिर पर टोपी छाता लगाता था। केवल एक लम्बा आसन एक दण्ड एक लोटा और दो चार पुस्तकें ही साथ थी। जम्मु से उदमपुर आया वहां से भूलकर पुरानी पगदण्डी

पर पड़ गया, छः सात मील चल कर पगदण्डी गुम गई, नीचे वेग-पूर्ण गहरी नदी ऊपर जङ्गलयुक्त पर्वत शिखर थे, पैर रखने को भी स्थान न मिला भय था कहीं नदी में न लुढक पड़ूं जैसे तैसे पर्वत के साथ लेटा लेटा सा घास को पकड़ पकड़ पत्थरों को चिपट चिपट कर गुमपगदण्डी को पार किया, साथ ही उसी दिन मार्ग में कुछ वर्षा भी हो जाने से भीग सा गया था। रात्रि को बटोत या बटोती पहुंचा बाज़ार बन्द था खाने को कुछ न मिला, एक दुकान के बरामदे में बैठ गया भूखा तो था ही साथ वर्षा की बौछारों और ऊंचे ऊंचे चील के वृक्षों में को गूंजते हुए वायु के झोंकों से ताड़ित हुआ अकेले ने घोर ठण्ड को सहते प्राणायाम और ओ३म् का जप करते हुए बैठे बैठे रात्रि व्यतीत की। प्रातः होने पर अनुभव किया मेरा समस्त शरीर जकड़ गया मानो रक्त जम गया कोई भी अङ्ग हिल सकने योग्य न रहा था। ऐसा शीत कभी नीचे देश में शीतकाल में भी नहीं प्रतीत हुआ था वह रात्रि १४ एप्रिल की थी जो शीतानुभूति के कारण सदा स्मरण रहेगी। अस्तु ! प्रातः होते ही मैंने दुकानदार से कहा मेरा शरीर ठिठुर गया है थोड़ी अग्नि जलादो तो मैं शरीर सेककर आगे मार्ग चलूं उसने दियासलाई की डब्बी फेंककर कहा कि बाहिर कूड़ा पड़ा है उसे जलाकर सेक लो, परन्तु मेरा शरीर तो हिल सकने योग्य था ही नहीं किन्तु क्या किया जावे ? धीरे धीरे बैठा बैठा खिसकता खिसकता कूड़े तक पहुंचा उसे जलाया शरीर सेका तो आगे मार्ग

चलने योग्य बना तो रामवण की ओर चल पड़ा। रामबण से आगे मार्ग बन रहा था पर्वत गिरा पड़ा था। सारे मार्ग में कंकर पड़े हुए थे कंकरों वाला मार्ग होते हुए भी मैं नंगे पैर रामवण से रामसुख होते हुए वानहाल एक ही दिन में २८ मील चला गया। वानहाल के ऊपर चार चार फुट का बर्फ आया उस पर नंगे पैर चलते फिसलते हुए आगे बढ़ा और खन्नाबल होते हुए श्रीनगर पहुंच गया। कश्मीर पहुंचकर वहां के अनेक प्रसिद्ध स्थानों को देखा, उस समय मैं लगभग २७ वर्ष का हूंगा।

चरखा कातकर अत्यन्त सूक्ष्म धागे पर पुरस्कार प्राप्ति—

लगभग २८ वर्ष की आयु में चरखे पर सूत काता चार पांच दिन में ही इतना सूक्ष्म धागा काता कि जिसका परिमाण एक रत्ती भर रूई में ५० गज धागा रखा। जालन्धर आया वहां आर्यसमाज जालन्धर का वार्षिक उत्सव हुआ उस समय श्री ला० देवराज जी प्रधान कन्या महाविद्यालय जालन्धर ने मेरे काते हुए धागे को हाथ में लेकर उत्सव में कहा कि यह धागा इतना सूक्ष्म काता है कि मैं इसे विना नयनक (ऐनक) के नहीं देख सकता। तुरन्त एक सज्जन ने १०) मेरे लिये पुरस्कार दिए जो मैंने उसी समय कन्यामहाविद्यालय को प्रदान कर दिए थे। कुछ दिनों के पश्चात् काशी में बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहां भी बारीक धागा कात कर दिखलाया था। जामपुर से डेरागाजीखां में एक चर्खा पांच तकलों वाला पैरों

से चलनेवाला भी बनाया था परन्तु वहां रबर कमानी चीनी की बनी सूत निकालने की हस्त नाली न मिल सकने से धागे टूट जाते थे। फिर मैं वहां से चला आया। मेरे पीछे उस चरखे को कोई सब ओवरसियर ले गए। कुछ सोचकर स्वयं बुनने का साधन बनाकर नमूने के रूप में कपड़े की एकपट्टी भी बुनी।

—:o:—

: ५ :

विशेष अध्ययन और कार्यकाल

जालन्धर से मैं अमृतसर आया वहां 'विरजानन्द आश्रम' गण्डा सिंहवाले पर वीतराग श्री० स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के दर्शन किए पुनः उनकी प्रेरणा से मैं जामपुर (जिला डेरागाज़ीखां) चला गया, वहां रहते हुए एक चरखा पांच तकले का पैरों से चलने वाला मैंने बनाया था। वहां मैं कुछ मास रहा लौटते हुए गुरुकुल मुलतान भी कुछ मास ठहरा वहां उस समय श्री० पं० चमूपति जी आचार्य थे उन्होंने मुझसे मण्डूक्योपनिषद् पढ़ी थी तभी वहां के व्याकरणाध्यापक ने भी महाभाष्य के आरम्भिक कुछ आह्निक पढ़े थे। उस समय मैं लगभग २९ वर्ष का था। वहां रहते हुए एक घटना हुई वह यह कि मैं गुरुकुल की बाहिरी ओर एक कोठरी में रहता था उन दिनों नीचे चटाई पर सोता था, प्रातः उठ शौच स्नानकर कोठड़ी के बाहिर तख्त पर सन्ध्या करके पुनः जब कोठड़ी के अन्दर

जाने लगा तो फुङ्कार सुनाई पड़ी, मैंने समझा कि कोठड़ी के आस-पास बाहिर ब्रह्मचारी कुछ कर रहे होंगे पर बाहिर इधर उधर देखा तो कुछ न था, पुनः कोठड़ी के अन्दर पग रखने लगा तो फिर फुङ्कार हुई, ध्यान से देखा तो एक चितकोडिया सर्प मेरे सोने की चटाई के पास नाली के साथ बैठा है (मुझे स्मरण है प्रातः सोकर उठने पर शौच के हाथ धोते हुए कुछ रस्सी सा हाथ से स्पर्श हुआ था) तो मैं अन्दर आ ही गया अन्दर आकर मैंने हवन किया और पश्चात् उसी चटाई के ऊपर बैठकर पढ़ने लगा जिसकी एक ओर सर्प भी बैठा था। कोई बात नहीं वह भी बैठा रहा और मैं भी पढ़ता रहा, इतने में गुरुकुल का एक कर्मचारी आया उसने आकर सर्प को देखा और वह बोला अरे ब्रह्मचारी जी सर्प बैठा है, मैंने कहा बैठा रहने दो वह बोला, नहीं ! यह मौत है मैं लाठी लाकर इसे मारता हूँ, वह लाठी लेने चला गया, मैंने अपनी लाठी उठाई जो कि सर्प के पास ही कोने में खड़ी थी उठाकर सर्प को लाठी से नाली की ओर करके कहा अरे जा चला जा नहीं तो वह तुझे आकर मार देगा, सर्प नाली में को बाहिर जाकर एक गढ़े में घुस गया।

मुलतान से फिर मैं श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के पास आया तो उन्होंने मुझे हरद्वागंज साधुआश्रम पर भेजदिया क्योंकि वे स्वयं तो अमृतसर गण्डासिंहवाले विरजानन्दाश्रम पर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के साथ रहते थे। मैं हरद्वागंज आश्रम में कुछ मास ठहरा था, वहां के मेरे प्रारम्भिक विद्यार्थी पं० शिवकुमार शास्त्री हैं जो

आजकल पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में महोपदेशक हैं। हरद्वागंज आश्रम में मैं अतिरुग्ण हो गया था वहां से आबुपर्वत की ओर जाने के सङ्कल्प से अजमेर आया। अजमेर में मैंने अपनी सर्व-प्रथम पुस्तक "ईशोपनिषद् का स्वरूप" नाम से प्रकाशित कराई जिस पर लेखक 'प्रियरत्न विद्यार्थी' नाम दिया है। इस पुस्तकमें पं० सातवलेकर जी के अर्थों का खण्डन है जो अर्थ ऋषि दयानन्दकृत भाष्य और सिद्धान्त के विरोधप्रदर्शक थे तथा ऋषि दयानन्दकृत अर्थों का मण्डन किया है* पुनः आबु पर्वत पर चला गया, आबु जाने का मुख्य लक्ष्य था योग सीखना, क्योंकि ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र में पढ़ा था कि ऋषि दयानन्द को आबु पर योगी मिले थे उन्होंने उनसे योग सीखा था। मैं वहां पहुंच गया और वहां हठयोगी दत्त स्वामी तथा राजयोगी ऊंचे साधु एवं स्वामी शान्तिनाथ आदि महात्माओं से समागम और योग का लाभ प्राप्त हुआ। आबु से गुरुकुल होशङ्गाबाद में अठहरा वहां मुख्याध्यापक का कार्य विशेषतः अष्टाध्यायी का अध्ययन कराया।

काशी में पुनरध्ययन—

काशी में दूसरी वार अध्ययन करने के लिये आ गया। कुछ बड़ा हो चुका था संस्थाओं में कुछ कार्य भी कर चुका था अब भिक्षा मांग कर पढ़ने में सङ्कोच हुआ अब कुछ कार्य करके पढ़ा जावे, एतदर्थ काशी विद्यापीठ के प्राचार्य प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान्

---

*इस विषय में पुस्तक प्रकाशन से पूर्व 'सद्धर्मप्रचारक' और 'आर्य-मित्र' में मेरे लेख भी छपते रहे।

बाबू भगवान् दास जी से मिला वार्तालाप हुआ उनसे निवेदन किया कि मैं काशी में पढ़ने आया हूं परन्तु किसी से मुफ्त न लेकर दो एक घण्टे कार्य करके पढ़ना चाहता हूं उन्होंने पूछा कितना मासिक चाहिए, मैंने १५) कहा, वे बोले यह तो बहुत थोड़ा है हम आपको अधिक देंगे हमें अधिक समय दें, मैंने कहा मैं पढ़ने आया न कि पढ़ाने। वह उत्तर सुनकर सन्तुष्ट हो गए और काशी-विद्यापीठ में १५) मासिक निर्वाह देकर आनरेरियम् दर्शनविभाग में प्रोफैसर बना दिया। मैं काशीविद्यापीठ में चतुर्थ वर्ष और प्रथम वर्ष की श्रेणियों को पढ़ाता था। चतुर्थ वर्ष की श्रेणी में पढ़नेवाले उस समय के विद्यार्थी लालबहादुर शास्त्री भी थे जो आजकल कई विभागों में केन्द्र की ओर से मन्त्रीपद पर कार्य करते रहे और अब सञ्चारमन्त्री हैं। काशीविद्यापीठ में मैं तीन अन्तर लगभग दो घण्टे पढ़ाता था भोजन का अन्यत्र कोई प्रबन्ध न होने से स्वयं बनाना पड़ता था और काशीविद्यापीठ से अढ़ाई मील दूर नगर में जाकर अन्य विद्वानों से पढ़ता भी था। इस बार वेद-विद्यालय में श्री पं० धुण्डिराज जी शास्त्री से वैशेषिकदर्शन प्रशस्तपादभाष्य उपस्कारवृत्ति का दो तिहाई भाग, महामहोपाध्याय पं० प्रभुदत्त जी शास्त्री से ऐतरेय ब्राह्मण आधा भाग और अन्य विद्वानों से सूर्यसिद्धान्त तथा वेदान्तदर्शन शाङ्करभाष्य चतुःसूत्री से कुछ आगे तक पढ़ा था। इसी बीच में "आर्ष विद्यासदन" औपचारिक संस्था खोलकर "माण्डूक्योपनिषद् का स्वरूप" और "कठोपनिषद् का स्वरूप" नचिकेता के प्रथम दो वरों की दो

पुस्तिकाएं एवं तीन पुस्तकें तथा "आर्ष ज्योति" मासिक पत्रिका का प्रथम अङ्क भी प्रकाशित किए। इतना सब कार्यभार न सम्भाल सकने से अतिरुग्ण होगया। इस प्रकार काशी में दूसरी वार भी ६ मास ही रहकर पढ़कर श्री० पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री आचार्य दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय लाहौर के निमन्त्रण पर मैं लाहौर चला गया।

दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय लाहौर में मैं सेवाभाव से कुछ काल अष्टाध्यायी आदि का अध्यापन कार्य करता रहा वहां रहते हुए ही "वेद का यमयमी संवाद" पुस्तक लिख कर तैयार की जिसे निबन्धरूप में श्री महात्मा हंसराज जी की उपस्थिति में विद्वत्परिषद् में जालन्धर पढ़ा था। दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय में रहते हुए मेस्मरेजम, और हिप्नोटिजम के परीक्षण तथा खेल भी किए, लाहौर के चिड़िया घर में सिंहों के ऊपर हाथ डाले उनके पसवाड़े पीठ कान मुख पर भी हाथ फेरे। पुनः आचार्य विश्वबन्धु जी से विचारभेद हो जाने पर ब्राह्ममहाविद्यालय छोड़ कर दिल्ली में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा खोले हुए उपदेशक विद्यालय में आचार्य पद पर कुछ दिन कार्य किया वहां ही "वेद का यमयमी संवाद, उपनिषदों का वेदान्त, मानवीय शक्तियों का परिचय और उनका विकास" ये तीन पुस्तकें प्रकाशित करीं। पुनः श्री मास्टर आत्माराम जी (अमृतसरी) के बुलाने पर बड़ौदा चला गया वहां आर्य कुमार आश्रम और उपदेशक विद्यालय का आचार्य रहा। "वेद का वामदेव ऋषि" पुस्तक छपाई तथा ब्राह्मण ग्रन्थों,

आरण्यकों, निरुक्त, उपनिषदों और गृह्य-धर्म सूत्रों में आए हुए वेद के मन्त्र मन्त्रांशों के अर्थों का संग्रह किया बड़ौदा के चिड़िया घर में भी सिंहों पर हाथ डाला उनके पसवाड़े पृष्ठ कान मुख पर हाथ फेरा। तीन वर्ष बड़ोदा रहा बेद का विशेष कार्य वहां न हो सकने से फिर वहां से भी महात्मा नारायण स्वामी जी ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से खोले हुए अनुसन्धान विभाग में कार्य करने के लिये मुझे बुला लिया। सार्वदेशिक सभा के अनुसन्धान कार्यालय में सेवाभाव से मैंने तीन वर्ष कार्य किया, वहां "यमपितृ परिचय, वेद में असित शब्द पर एक दृष्टि" ये दो पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित हुई तथा "वेद में इतिहास नहीं" पुस्तक भी सभा के लिये लिख कर तैयार की और इस पुस्तक के लेखन काल में कुछ दिन जयपुर रहने का भी अवसर हुआ वहां प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० मधुसूदन जी ओझा से भी समागम हुआ। उस समय ही जयपुर में कुछ आयुर्वेदिक ग्रन्थ भी पढ़े। जयपुर के चिड़िया घर में भी सिंहों पर हाथ डाला उनके पसवाड़ पीठ कान और मुख पर हाथ फेरा। उसी बीच में "जीवन पथ, योगमार्ग" ये दो पुस्तकें भी लिख आर्य साहित्य मण्डल अजमेर के द्वारा प्रकाशित कराई। तब मेरी आयु लगभग ४१ वर्ष की थी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का अनुसन्धान कार्य आगे न रहा था अतः मैं कुछ काल गुरुकुल कांगड़ी में आकर स्वतन्त्र रूप से ठहर गया।

—:o:-

: ६ :

विशेष लेखन कार्य

गुरुकुल कांगडी में मैंने मेस्मरेजम और हिप्नोटिजम के विशेष परीक्षण किए थे। एक वार गुरुकुल के समस्त ब्रह्मचारियों अध्यापक-उपाध्यायों एवं अधिकारियों के सम्मुख परीक्षण किया था जिसका विवरण दैनिक "अर्जुन" २७ दिसम्बर १९४३ ईसवी में संयुक्तसम्पादक ने स्वयं देख कर प्रकाशित कराया था। जो निम्न प्रकार है—

"गुरुकुल कांगडी में २३ दिसम्बर को श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस बडी धूम धाम से मनाया गया। छोटि श्रेणियों के ब्रह्मचारियों ने अछूतोद्धार का एक अभिनय किया जिसे दर्शकों ने बहुत पसन्द किया। अभिनय सिखाने वाले तथा कराने वाले पं० प्रियरत्न जी आर्य * ने ब्रह्मचारियों को साढ़े दश रुपये परितोषिक

* वर्तमान स्वामी ब्रह्ममुनि

देकर उन्हें उत्साहित किया। इसकेबाद उक्त पण्डितजीने हिप्नोटिजम के अनेक खेल दिखलाए। पं० प्रियरत्न जी आर्ष का नाम हिप्नो-टिजम के सिलसिले में पहिले ही लोग जानते होंगे। पं० वेदव्रत जी वेदालङ्कार ने कहा कि मेरे एक अङ्ग में दर्द है, क्या आप हिप्नोटिजम के द्वारा बता सकते हैं कि रोग कहां है और क्या औषध है ? इस पर पं० प्रियरत्न जी आर्ष ने तुरन्त ही एक छोटे लडके को हिप्नोटिजम के जरिये नीन्द में लाकर उस से प्रश्न किया। लडके ने बताया कि वेदव्रत जी की आन्त्र की ऊपर की नाडी जो दाँई ओर नीचे (आन्त्र पुच्छ) है उसमें दर्द है। साथ ही लडके ने नुसखा भी बतलाया जिसे सुनकर स्थानीय वैद्यों को भी आश्चर्यचकित होना पडा । ब्रह्मचारी ने विषगर्भ तैल की मालिश बतलाई थी और विना चुपडी खुश्क रोटी तथा विना घृत के दाल-भाजी खाने को भी कहा था। (अर्जुन दैनिक २७ दिसम्बर १६४३ ई०)

लगभग दो अढाई सौ मनुष्यों के समूह में बताने का यह प्रथम अवसर था। इत्यादि विषयों की जानकारी के लिये हमने "क्रियात्मक मनोविज्ञान" पुस्तक यहां गुरुकुल कांगडी में रहकर लिखी। आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब ने एक पत्र भेजा था कि हम ऋषि दयानन्दकृत ऋग्वेद-भाष्य से शेष ऋग्वेद का भाष्य कराना चाहते हैं आप उनके भाष्य से आगे ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ६१ और ६२ का अपना भाष्य ऋषि-शैली पर संस्कृत और हिन्दी में करदें। तदनुसार मैंने "मित्र वरुण की शिक्षा" नाम से पुस्तक

भी लिखी थी, ये दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। "मित्रवरुण की शिक्षा" तो छपी हुई पाकिस्तान में रहगई है "क्रियात्मक मनोविज्ञान" का द्वितीय संस्करण 'राजपाल एण्ड सन्ज' कश्मीरीगेट दिल्ली ६ ने प्रकाशित करादिया है "वेद में इतिहास नहीं" पुस्तक भी प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा लाहौर ने प्रकाशित करादी थी। अस्तु।

वैदिक संस्थान गुरुकुल वृन्दावन में—

उपर्युक्त तीन पुस्तकों के लिखने और प्रकाशित कर देने के अनन्तर आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तरप्रदेश के निमन्त्रण पर उक्त सभा द्वारा गुरुकुल वृन्दावन में खोले हुए "वैदिक संस्थान" में आया और वहां तीन वर्ष में यजुर्वेद भाष्य का कार्य पूरा करके आर्यसमाज द्वारा चलाए हैदराबाद सत्याग्रह में चलागया था। गुरुकुल वृन्दावन में यजुर्वेदभाष्य का कार्य करते हुए भी "सोम-सरोवर का स्नान," वैदिक सूर्य-विज्ञान*, और वैदिक मनोविज्ञान, ये तीन पुस्तकें लिखी थीं जो प्रकाशित भी होगई थी। हैद्राबाद सत्याग्रह में जाते समय भी "निजाम की साम्प्रदायिक नीति और हमारा कर्तव्य" पुस्तक लिख और निज धन से प्रकाशित कर मार्ग में विना मूल्य वितरण करता चला गया। जेल में चार मास रहा सत्याग्रह समाप्त हो जाने पर छूटा छूटते ही टाईफाईड में गम्भीर

*वैदिक सूर्यविज्ञान, पुस्तक गुरुकुल वृन्दावन के उत्सवपर वेद-सम्मेलन में पढा निबन्ध था इसे सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा दिल्ली ने प्रकाशित किया है।

रोगी होकर बचा था जेल में २० पौण्ड भार भी शरीर का घटा था। स्वस्थ होने पर फिर हैद्राबाद राज्य में प्रचारार्थ चला गया था डेढ मास वहां प्रचार करके लौटा और हरिद्वार में आ ठहरा, कभी वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर कभी गुरुकुल कांगडी ठहर जाता था। इन दिनों में "ब्रह्मवेद का रहस्य" * अथर्व वेद का प्रथम अनुवाक (प्रारम्भिक छः सूक्त) अर्थसहित लिखा था। पुनः "अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र बडा ग्रन्थ लिखा जिस के अन्दर अधिकांश में अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा चरक सुश्रुत की भांति सूत्रस्थान, शरीरस्थान, निदानस्थान और चिकित्सास्थान क्रम से निबद्ध किए हैं। इसे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा दिल्ली ने छपाया है।

इसी बीच में "अथर्व वेदीय मन्त्र विद्या" पुस्तक भी लिखी थी जिसे गुरुकुल कांगडी ने प्रकाशित किया है। "विश्वविज्ञान और परमात्मबोध"(मनसापरिक्रममन्त्रव्याख्या) भी लिखी थी। इसे 'गोविन्दराम हासानन्द' नई सडक दिल्ली, ने प्रकाशित कराया। फिर "ऋग्वेद में देवकामा या देवृकामा" पुस्तिका लिख सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित कराई। "वेद में दो बडी वैज्ञानिक शक्तियां" और "विमान शास्त्र" पुस्तकें भी लिखकर प्रकाशित कराई "अव्ययार्थ निबन्धनम्" अप्रकाशित पडी है। बडोदा से खोजकर "पुरातन नाडी विज्ञान" भी लिखी थी जिसे प्रकाशनार्थ पं० ठाकुर दत्त जी शर्मा अमृतधारा (लाहौर) को भेंट करदी थी वह उनके यहां गुम हो गई। पश्चात् "वैदिक ज्योतिष-शास्त्र"

*इसे आर्यप्रतिनिधि उत्तरप्रदेश ने प्रकाशित किया।

लिखा जिस में वेदमन्त्रों के द्वारा खगोल-विज्ञान दर्शाया है यह सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभादिल्ली के द्वारा प्रकाशित की गई है। इस पर बडोदा राजकीय संस्कृत पुस्तकभवन के अनुसन्धान-विभागाध्यक्ष श्री डाक्टर विनयतोष जी भट्टाचार्य P. H. D लन्दन की सम्मति निम्न प्रकार है—

Opinion on the Vaidika Jyotisha Sastra

by

Rajyaratna Jnanajyoti, Dr. B. Bhattacharya, M. A., Ph. D.,

Director of Oriental Institute, BARODA.

Pandit Priyaratna Arsa, now known by his monastic name of Swami Brahmamuni, is an indefatigable writer of Vedic studies in Hindi. He has enriched the Hindi literature by priceless productions which show at once great originality and extraordinary gift in interpreting Vedic passages.

One of his latest books is the Vaidika Jyotisa Sastra, a work of great value to Indian astronomy as well as astrology. So long people were under the impression that the Vedas were ignorant of the celestial phenomena of the

precession of equinoxes and even of the names of the planets. In this well documented volume Swami Brahmamuni has unmistakably shown that the Vedic Rishis were thoroughly conversant with the motion of the equinox, the twelve divisions of the zodiac, the names of all the planets, even of the nodes of the Moon, Rahu & Kethu or Dhumaketu, Ulka, and so forth.

Swami Brahmamuni has criticised the findings of the late Bala Gangadhar Tilak in dating Rigveda, and has adduced very weighty arguments on the basis of original Vedic passages. The worthy Swami's viewpoint deserves to be studied by all serious students of the Vedas. The author has earned the gratitude of all Indian Scholars by his painstaking work.

Sd/ B. Bhattacharya

पश्चात् "वैदिक अध्यात्म सुधा" पुस्तक लिखकर प्रकाशित करदी गई। चारों वेदों के मन्त्र मन्त्रांशों के अर्थों का संग्रह जो बड़ोदा में किया था उसको ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र से अथर्व वेद के

अन्तिम मन्त्र तक के क्रम से व्यवस्थित कर के लिखा जो कि वैदिक विद्वान् श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ की भेंट प्रकाशनार्थ दे दिया था, उनके प्राणान्त के पश्चात् उत्तराधिकारियों से मैंने उसे मांगा भी परन्तु अभी तक मुझे प्राप्त नहीं हुआ। अस्तु। यहां तक मेरे ५० वर्ष तक की आयु का कार्यक्रम रहा।

: ७ :

संन्यासग्रहण, प्रचार और लेखनकार्य

जब मंहगाई बढ़ी बैठकर लेखन कार्य करना कठिन हो गया तो संन्यास लेकर मौखिक कार्य करने का विचार हुआ। अपनी ५१ वर्ष की आयु में शिवरात्रि फाल्गुन वदी त्रयोदशी दिन रविवार को❀ आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में वैदिक विद्वान् श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ से संन्यास की दीक्षा ली, प्रियरत्न आर्ष से स्वामी ब्रह्ममुनि नाम रखा गया*। संन्यास लेते ही मैं राजस्थान

❀ शिवरात्रि दिन रविवार १९५० वि० में मेरा जन्म हुआ था।

* यद्यपि मैंने अपना नाम ब्रह्मभिक्षु रखना सोचा हुआ था इसलिये कि बैठकर लिखकर कार्य करता रहा संन्यास में स्थान स्थान पर भाषण व्याख्यान देने होते हैं मेरी उधर रुचि नहीं थी और न व्याख्यान देना आता था न उसका अभ्यास ही था। सोचा मुझे तो कदाचित् भिक्षा मांग कर निर्वाह करना पड़े अतः यथा

की ओर चल पड़ा यह सङ्कल्प लेकर कि ऋषि दयानन्द के जीवन की अन्तिम घड़ियां किन्हीं भावनाओं को लेकर राजस्थान में बीती हैं चलो ऋषि की भावनाओं में भागी बनो। यह सङ्कल्प तीन वर्ष के लिये ले लिया, तीन वर्ष क्यों यह ईश्वर जानें *। रजवाड़ों में भ्रमण करते हुए जब तक नयपाल तक न पहुंच लूं तब तक ब्रिटिश नगर में न जाऊंगा। सो यह दोनों बातें पूरी कीं, रजवाड़ों में घूमते हुए समस्त राजपूताने समग्र सौराष्ट्र और कच्छ एवं नयपाल तक पहुंच लेने के पश्चात् ब्रिटिश नगर में जाने आने लगा। रजवाड़ों में तीन वर्ष तक वैदिक धर्म का प्रचार एवं आर्य समाजों में भी सप्ताह सप्ताह भर तक कथा करता रहा। यथा-सौराष्ट्र में वीरपुर, सायला, पोरबन्दर, गोण्डल, मौर्वी, ध्रांगध्रा और भावनगर के राजे महाराजाओं के सम्मुख मेरे प्रवचन हुए। राजपूताने में भी बनेडा, शाहपुरा, अलवर के महाराजाओं तथा उदयपुर में उदयपुर महाराणा भोपालसिंह जी के सम्मुख (दरबार में) मेरा उपदेश हुआ। नयपाल भी गया वहां के महाराजा पद्म शमशेर जंगबहादुर राणा के समक्ष भी धर्मचर्चा का प्रसङ्ग चला।

कर्म तथा नाम होना उचित है। ब्रह्म अर्थात् ईश्वर प्राप्ति और वेदज्ञान के लिए भिक्षु बन रहे हो अतः ब्रह्मभिक्षु नाम ठीक है। परन्तु स्वामी जी ने इसे स्वीकार न किया ब्रह्ममुनि नाम रखा ब्रह्म-ईश्वर और वेद का मनन करने वाला अर्थ दर्शा कर यह नाम रखा।

* दैवयोग से तीन वर्ष में राजे महाराजे समाप्त हो गए।

नयपाल में आर्यसमाज के उपदेशक पं० शुक्रराज शास्त्री को महाराजा युद्ध शमशेर जंगबहादुर राणा ने धर्मान्धता और सत्तामदान्धता के वश धर्मप्रचार करने महात्मा गांधी आदि नेताओं के प्रति भक्ति भावना रखने को अपराध मानकर फांसी देदी थी, उस हुतात्मा धर्म पर अपने को बलिदान देनेवाले महान् आत्मा के घर को देखा उसकी माता और बहिन को मिला था। नयपाल हो आने के पश्चात् ब्रिटिशनगर में जाने आने लगा तथा रजवाड़ों में भ्रमणार्थ तीन वर्ष का सङ्कल्प या व्रत ऋषि दयानन्द के जन्मस्थान टङ्कारा (मौर्वी) में पूरा किया एवं जैसे ही राजेमहाराजाओं में जाने का सङ्कल्प समाप्त आ तैसे ही दैवयोग से राजेमहाराजे भी समाप्त हो गए। नीति कुशल लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल उपराष्ट्रपति के द्वारा उनकी राजसत्ता विलीन कर दी गई।

रजवाड़ों में तीन वर्ष का व्रत पूरा करके भारत के भिन्न भिन्न प्रदेश में प्रायः सभी प्रान्त प्रदेशों में प्रचार करता रहा। दक्षिण के नीलगिरि और उत्तर के कैलाश पर्वत को छोड़कर प्रायः समस्त पर्वतों की यात्रा की, यथा—मसूरी, शिमला, ज्वालामुखी, धर्मशाला, डलहौजी कुल्लू, मणिकर्ण (जहां गरम जल का स्रोत है साराग्राम वहां अपना भोजन विना ईन्धन स्रोते के गरम जल से बनाता है) नैनीताल, अलमोड़ा, कश्मीर,कोयटा (विलोचिस्तान), आबु, अमर कण्टक में भ्रमण प्रचार करता रहा। अनेक पुरातन निखातस्थानों की यात्रा भी की है रावलपिण्डी के पास में तक्षशिला, हैद्राबाद दक्षिण के एलोरा अजन्ता गुफाएं, विहार में नालन्दा भी देखे।

अब प्रायः प्रचारकार्य बन्दसा करके कई वर्षों से लेखनकार्य में ही लगा रहता हूं। लेखनकार्य में मेरे निवासार्थ तथा अनुसन्धान के लिये पुस्तक भवन (लाईब्रेरी) के उपयोगार्थ गुरुकुल कांगड़ी विशेष आश्रय रहा एतदर्थ मैं गुरुकुल के अधिकारियों का कृतज्ञ हूं।

संन्यासावस्था में लिखी पुस्तकों का विवरण—

१—रामायणदर्पण।

इसमें रामायण के भरत आदि पात्रों तथा रामायणकालीन धार्मिक राजनैतिक आदि परिस्थितियों का क्रमशः प्रकाश किया है। यह पुस्तक राजस्थान शिक्षा विभाग में स्वीकृत है।

२—महाभारत शिक्षासुधा।

३—आर्षयोगप्रदीपिका।

इसमें महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्रों का और व्यासभाष्य का हिन्दी अनुवाद तथा सूत्रार्थों एवं व्यासभाष्य का क्वचित् क्वचित् आवश्यक विवरण भी किया है।

४—उपनिषद्-सुधासार।

इसमें ईश, केन, कठ और माण्डूक्य उपनिषदों की हिन्दी व्याख्या है।

५—वैदिक राष्ट्रियता।

६—वैदिक ईशवन्दना।

ऋग्वेद के दो वरुणसूक्तों की व्याख्या।

७—वैदिक योगामृत।

अहिंसा से लेकर सामधि पर्यन्त योगाङ्गों का वेदमन्त्रों द्वारा प्रतिपादन एवं वैदिक संस्कृति का प्रदर्शन है ।

८—दयानन्ददिग्दर्शन ।

ऋषि दयानन्द के जीवन पर क्रमबद्ध विविध उपयोगी प्रकाश डाला है । यह पुस्तक गुरुकुल कांगड़ी की पञ्चम श्रेणि में पढ़ाई जाती है ।

९—वेदान्तदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम् ।

वेदान्तदर्शन पर विवेचनात्मक संस्कृतभाष्य । इस पर उत्तर-प्रदेश राज्य से २५०) पुरस्कार प्राप्त हुआ है । काशी के महामहो-पाध्याय श्री पं० नारायण शास्त्री खिस्ते भूतपूर्व प्रिंसिपल गवर्न्मेन्ट संस्कृत कौलिज बनारस की निम्न सम्मति है—

भवत्सङ्कलितं वेदान्तदर्शनं मयाऽऽमूलचूलं सम्यग्दृष्टम् । रुचिरा भवतां सङ्कलनशैली, सरलाभाषा, सुगमा पद्धतिश्च वाढमाकर्षति चेतः । विचारधारा च प्रायो नवीनेव, श्रीमदाचार्यभगवत्पाद-शङ्कराचार्यणां भाष्ये बहवो विकल्पा उट्टङ्किता भवद्भिः । एतादृश-नवीनशैलीविचारवतामवश्यमुपादेय उपकारकश्च ग्रन्थोऽयमिति मे सम्मतिः । प्राचीनविचारानुगा अपि यदि ग्रन्थमिममालोचयेयुः प्रतियोगिविधया तदा तेषामपि स्वमतदार्ढ्याय ग्रन्थोऽयमुपयुक्तो भवेदिति ।

ना-शा-खिस्ते-शर्मणः ।
२२ । ४ । १९५५ ई०

विद्वद्वर श्री० आचार्य स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती की सम्मति—

आपने भाष्य में त्रैतवाद का प्रतिपादन सूत्रों के आधार पर ही किया। शाङ्करभाष्य की समालोचना भी व्याससूत्रों और आर्ष ग्रन्थों के आधार पर ही की है। मैंने इस भाष्य को आद्योपान्त पढ़ा है, मुझे यह लिखने में कोई सङ्कोच नहीं कि आप अपने सिद्धान्तस्पष्टीकरण में सर्वथा सफल हुए।

आत्मानन्द सरस्वती
आचार्य दयानन्दोपदेशक विद्यालय
यमुना नगर
१८। ७। १९५४ ई०

१०—सांख्यदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्।

सांख्यदर्शन पर विवेचनात्मक संस्कृतभाष्य। इस पुस्तक पर उत्तर प्रदेश राज्य से ४००) पुरस्कार प्राप्त हुआ है। काशी के महामहोपाध्याय श्री पं० नारायण शास्त्री खिस्ते भूतपूर्व प्रिंसिपल गवर्न्मेंण्ट संस्कृत कौलिज बनारस की निम्न सम्मति—

भवत्सङ्कलितं सांख्यदर्शनं सभाष्यं मयाऽऽमूलचूलं सम्यगालोचितम्। सङ्कलनशैली समीचीना भाषा च सरला वाढमाकर्षति नश्चेतः। विचारधारा च प्रायोऽभिनवेव भाति। सांख्ये निरीश्वरवादं निरस्य सेश्वरवादं प्रस्थापयतां भवतां कृत्यं कौतुहलं जनयति। आशासे भवद्भिरन्यान्यपि दर्शनान्येवमेव स्वोपज्ञभाष्यसहितानि

प्रकाश्य विदुषां छात्राणां च महानुपकारः करिष्यत इति शम् ।

भवदीयस्य ना० शा० खिस्ते शर्मणः

६ । १२ । १९५५ ई०

विद्वद्वर श्री० आचार्य आत्मानन्द जी सरस्वती की सम्मति—

अनिरुद्धविज्ञानभिक्षु आदि विद्वान् भाष्यकार सांख्यदर्शन को निरीश्वरवादी मानते रहे। योगदर्शन और सांख्यदर्शन की सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य इन दो नामों से प्रसिद्धि इसीलिए हुई। समानतन्त्र होने से इन दोनों ही दर्शनों में ईश्वर का प्रतिपादन स्वाभाविक था जैसाकि न्याय और वैशेषिक में। परन्तु सङ्गति ठीक न लग सकने के कारण सांख्यदर्शन को निरीश्वरवादी कहने लग गए। वेदों को प्रमाण माननेवाले महर्षि कपिल अपने शास्त्र में ईश्वर का निषेध कैसे करते, "क्योंकि ईशा वास्यमिदं सर्वं..." वेदवचनों में तो स्थान स्थान पर ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन है। परन्तु भाष्यकारों के इस दर्शन पर अनीश्वरपरक व्याख्यानों को देख लोगों को विवश ऐसा मानना पड़ा था। अब प्रसन्नता की बात है कि इस उलझी हुई समस्या को स्वामी ब्रह्ममुनि जी के भाष्य ने सुलझा दिया है। इस भाष्य में युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा स्वरस सङ्गति लगाकर उन्हीं कपिलसूत्रों में ईश्वर की सत्ता को सिद्ध कर दिया है। सांख्यदर्शन में "निराशः सुखी पिङ्गलावत्" इत्यादि व्यावहारिक दृष्टान्त देकर सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है। आपने उन दृष्टान्तों का ऐसा सारगर्भित अर्थ प्रकट किया है जिससे कि दृष्टान्तों के द्वारा दार्ष्टान्तों की सिद्धि स्वाभाविक प्रतीत होने

लगी। कई विद्वान् सांख्यदर्शन को ईश्वरकृष्णकृत कारिका से भी नवीन मानने लग पड़े थे। परन्तु आपके इस भाष्य ने उनकी इस धारणा को हटा कर प्राचीनता की धारणा को अवलम्बन दिया है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि स्वामी जी अपने ध्येय में सफल हुए हैं।

आत्मानन्द सरस्वती
आचार्य दयानन्दोपदेशक विद्यालय, यमुनानगर
१४। ६। १६५५ ई०

११—सांख्यदर्शन भाषानुवाद।

यह प्रकाशनार्थ 'आर्य साहित्य मण्डल अजमेर' में पड़ा है।

१२—वैदिक अगस्त्य ऋषि।

श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ की भेंट प्रकाशनार्थ दे दिया था उनके देहान्त के पश्चात् उत्तराधिकारियों ने गुमा दिया।

१३—दार्शनिक अध्यात्मतत्त्व।

१४—वैदिकवन्दन।

इस पर उत्तरप्रदेश राज्य से ४००) पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस पुस्तक में चारों वेदों का यावत्सम्भाव्य अध्यात्मविषय का वर्णन है। प्रारम्भ में ऋग्वेद के १३ सूक्त और यजुर्वेद का ४० वां अध्याय पश्चात् ईश्वर, जीवात्मा, मन, मोक्ष आदि पर प्रकरणशः वर्णन है। इसका परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण भी छपा है।

१५—बृहदारण्यकोपनिषद्-कथामाला।

'गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली ने प्रकाशित कराया है।

१६—बृहद् विमानशास्त्र ।

महर्षि भारद्वाज के विमानकलाविषयक तीन सहस्र श्लोकों का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद जिसमें विमान सम्बन्धी अपूर्व अद्भुत वर्णन है । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

इस पर उत्तरप्रदेश राज्यद्वारा मुझे ५००) पुरस्कार मिला है ।

१७—वेदान्तदर्शन भाषानुवाद ।

इसे 'सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दयानन्दभवन नई दिल्ली १ प्रकाशित कराने वाली है, वहां दिया हुआ है ।

१८—छान्दोग्योपनिषद्-कथामाला

१९—बालजीवनसोपान

२०—'वेद के एक सन्दिग्ध प्रकरण का विवेचन' इसमें "सविता प्रथमेऽहन्..." (यजु०अ०-३९) का विचार है ।

२१—निज जीवनवृत्त वनिका ।

यह हाथों में प्रस्तुत है । इसके लेखन तक मेरी आयु का ६७ वां वर्ष व्यतीत हुआ । फरवरी १९६१ ई० तक मेरी आयु के ६७ वर्ष समाप्त हुए जानें ।

: ८ :

विशेष वृत्त

मुझे अपने जीवन से यह सन्तोष अवश्य है कि जब जब जिस जिस कार्य को मैंने उठाया या जिस जिस कार्य के करने का सङ्कल्प किया मैं उस उस में सफल होसका या उस को सफलता से पूरा कर सका। वह कार्य चाहे निज के अध्ययन का हो लेखन का हो प्रचार का या अन्यों के सम्बन्ध में हो, यह ईश्वर की मुझ पर कृपा रही। उन उन कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

१–अष्टाध्यायी आदि आर्षग्रन्थों का यथेष्ट अध्ययन कर सका और करा सका।

२–वेदों एवं आर्षग्रन्थों में जिस जिस प्रकरण या ग्रन्थ पर निबन्ध, भाष्य या पुस्तक लिखना चाहा उसे सफलता से लिखसका चाहे वे कितने भी कठिन विषय रहे हों या हस्तकला का कार्य भी क्यों न हो।

३—जिस जिस राज्य या प्रदेश में या रजवाड़ों में प्रचार करने

का निश्चय किया वहां वहां पहुंच सका और वैदिक सन्देश सुना सका तथा ग्रन्थ अर्थात् योगदर्शन, अन्यदर्शन, उपनिषद् या वेद के प्रकरण पर कथा व्याख्यान देने का सङ्कल्प किया उसे पूरा करसका।

४—अन्यों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कर्तव्यदृष्टि से जिस जिस सेवा को धन आदि से करना कराना चाहा उसे कर और करा सका। मैं अपने जीवन में जीवन भर कृतकृत्य रहा निराशा का सम्पर्क जीवन के साथ नहीं हुआ और कभी निराशा किसी परिस्थितिवश आई भी तो वह दैवकृपा से स्वतः ही आशा में परिवर्तित होगई क्योंकि निराशता जीवन का अङ्ग सङ्ग कभी न रही थी। सफलता जीवन की सङ्गिनी रही।

उपर्युक्त सफलता का कारण मैं वैदिक भावनाओं को मानता हूं जिनको मैं अपने दैनिक जीवन में अपनाता या व्यवहृत करता रहता हूं। मुख्यरूप से वेदकी दो भावनाएं मैं अपने दैनिक जीवन में या मन में वेद के निम्न दो मन्त्रों द्वारा बिठाता रहता हूं—

(क) कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥
(अथर्व० ७।५२।८)

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) कर्म मेरे दक्षिण हाथ में (जय मे सव्ये-आहितः) जय विजय सफलता मेरे वाम हाथ में रखी है प्राप्त है (गोजित्-भूयासम्) गौओं का वा भूमि का विजेता बनूं (अश्वजित्) घोड़ों का राष्ट्र का विजेता (धनञ्जयः) धनसम्पत्ति

का विजेता (हिरण्यजित्-भूयासम्) ऐश्वर्य का विजेता होऊं-बनूं ।

मानव को सदा कर्मशील रहना चाहिए आलस्य प्रमाद को पास न आने देना चाहिए। संसार में उन्नत होकर जीवित रहने वाले के लिये आलस्य मृत्यु के समान है "आलस्यं जीवतो मृतिः" (हितोक्तिः) स्वाधीन जीवन बनानेवाले स्वावलम्बी होने वाले जन कभी निराश और हताश नहीं होते धैर्य के साथ यत्नपरायण रहते हुए कार्य में लगे रहते हुए अवश्य सफलता प्राप्त किया करते ही हैं। आगे बढने वाले के लिये कर्मकरना और उसमें सफलता प्राप्त करना दोनों ही दाए' बाए' हाथों के सुगम खेल एवं हलके खिलोने बन जाते हैं, वहां न कर्तव्य में कभी बहाना और न सफलता से कभी च्युति। एक दो वार असफल होकर भी वे भाग्य के भरोसे रोते नहीं हैं किन्तु "यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः" यत्न करने पर सिद्ध न होने में कोई दोष है उसे खोजकर दूर करते हैं। इस प्रकार जीवन को यत्नवान् और आशावान् बनाना भी मानव के हाथ में है।

(ख) अपने मस्तिष्क को ऊंचा बनाने और मस्तिष्क के ऊंचे ऊंचे कार्य करने में शक्त और सफल बनाने में निम्न वैदिक मेधावेश की भावना है—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।
(यजु० ३२ । १४)

(अग्ने) ज्ञान प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! (देवगणाः पितरः-च) विद्वान् ऋषि मुनिगण और पूर्वज पालकजन (यां मेधाम्-उपासते) जिस धारणावती बुद्धि को सेवन करते आए हैं (तया मेधया) उस बुद्धि से (अद्य) आज इसी जीवन में अभी (मां मेधाविनं कुरु स्वाहा) मुझे बुद्धिमान् कर यह कथन यह आशा सत्य हो पूरी हो।

एकान्त और शान्तस्थान में बैठकर उक्त मन्त्र के अर्थानुसार मनोभावना करना, परमात्मा को आत्मा में साक्षात् समझ याचना करनी चाहिए। आदि सृष्टि के अग्नि या ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त अन्य ऋषि महर्षि आदि महानुभाव जिस धारणावती बुद्धि को सेवन करते आए उसे मेरे अन्दर आविष्ट करो में उसका अपने अन्दर आधान आकर्षण करता हूं। अभी अपने अन्दर बिठाता हूं। ऐसे अर्थभाव के साथ मन में मन्त्र का जप कुछ देर करना चाहिए कि वह ऐसी बुद्धि आ रही है और अवश्य प्राप्त होगी *।

—:o:—

*इस "यां मेधां..."मन्त्र का उक्त रीति से जप प्रतिदिन तीस चालीस वर्ष से मैं कर रहा हूँ मुझे इससे अत्यन्त लाभ हुआ (स्वामी ब्रह्ममुनि)।

: ६ :

अन्तिम निराशा, पश्चात्ताप और चेतावनी

सिकन्दर ने अपने समग्र जीवन को धनसम्पत्ति के संग्रह में लगाया अन्तिम समय पछताया रोया क्यों ? पाप से धन संग्रह तो पापोपार्जन पापमय जीवन पर रोना ही हुआ, पापरहित धन संग्रह तो धनोपार्जन है न कि पुण्योपार्जन तब भी रोना ही है मनुष्य के लिये, धन तो यहां का यहां ही रह जावेगा यह साथ जाने वाला नहीं है किन्तु पुण्य धर्म ही साथ जाता है काम आता है "एक एवं सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः" मानव को अपने यौवन काल से धर्म का उपार्जन-धर्माचरण करना चाहिए, क्योंकि—

को हि जानाति कस्याद्यमृत्युकालो भविष्यति ।
युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम् ॥

(महा० भा० शान्तिप० मो० अ० १७५)

कौन जानता है आज किसका मृत्युकाल होगा अतः मनुष्य

युवा होता हुआ ही धर्मशील–धर्माचरण करने के स्वभावाला हो, जीवन सदा नहीं रहता यह अस्थिर है।

तथा—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
(केनो० ख० २ । ५)

इस जीवन में ब्रह्म-परमात्मा को जानलिया तो ठीक है मानव-जीवन सार्थक है, सफल है नहीं जाना तो महती क्षति है, भारी हानि है।

सो सिकन्दर की भांति पापसहित या पापरहित धनसंग्रह की स्थिति में तो मैं नहीं हूं और धर्माचरणरहित जीवन भी मेरा नहीं, धर्म्य जीवन रहा ही है, आस्तिकता आध्यात्मिकता एवं ईश्वरोपासना का भी जीवन में संस्पर्श है ही फिर निराशा और पश्चात्ताप कैसा है? यही है जैसा कि उक्त उपनिषद्वचन में कहा है वैसा अवसर जीवन में आकांक्ष्य है उसकी आकांक्षा है उसके पूर्ण आधान के लिये यौवनकाल को पूर्णरूप से न दिया किन्तु यौवनकाल अन्य कार्यों-शास्त्रीय सत्कार्यों में व्यतीत हुआ, विशिष्ट अध्यात्मानुष्ठान के लिये पूर्ण समय देना-अब इस ६६वें वर्ष से अवशिष्ट आयु को विशिष्ट अध्यात्म में ध्यानोपासन में लगाने का निश्चय किया हुआ था पर सहसा वाम पैर की एडी के पीछे शोथ और पीडा बल पकड गई, यद्यपि इस रोग का प्रारम्भ तीन वर्ष से है परन्तु प्रारम्भ में तो किसी स्थान या कठोर वस्तु के साथ टकरा जाने से ही थोडी सी पीडा होती थी, कुछ काल पश्चात् इस पैर को नीचे

रख आसन जमाकर बैठने से भी पीडा प्रतीत होने लगी पश्चात् कुछ शोथ भी प्रकट हुआ और चलने में भी पीडा होने लगी, पुनः शोथ एडी के दोनों ओर फैल गया चलने में लंग और बैठने में भी पीडा चीस होने लगी। ऐक्सरे कराया कभी डाक्टर कहते हैं एडी की हड्डी कुछ बढी है कभी कहते हैं हडडी में छिद्र हुआ सा प्रतीत होता है कभी कहते है हडडी कुछ गल सी गई है। किन्तु स्पष्ट पता न होने से आप्रेशन नहीं किया जा सकता। ऐलोपैथिक होम्योपैथिक और आयुर्वैदिक अनेक उपचार किये पर लाभ न हुआ। कोई रोग दो चार दिन या पांच दश दिन के लिए आ जावे तो उसकी चिन्ता नहीं वह तो दूर हो ही जाता है परन्तु ऐसा रोग जो जीवन के साथ लग जावे वह तो अन्त तक सताता और रुलाता है। योगाभ्यास में बाधक रोग को कहा गया है ही। नौ बाधकों में प्रथम संख्या व्याधि-रोग की "व्याधिस्त्यानसंशम प्रमाद०" (योग दर्शन १ । ३०) में कही है। यह पैर का रोग कब जाता है या क्या करता है यह तो भविष्य के गर्भ में ही है अतः निराशा है, पश्चात्ताप है। तथापि चिकित्सा में सारा जीवन समाप्त किया जावे ऐसा तो मैं न करूंगा, कुछ काल और कर देखता हूं फिर तो ईश्वराधीन, ही समर्पित कर छोड़ूंगा*।

लेखन कार्य में कतिपय अन्य कठिनाईयां—

पाद रोग के साथ लिखते लिखते अङ्गुलियों में अब लिखने की शक्ति नहीं रही। हर दो तीन मिनट में अङ्गुलियां लिखते

* अभी भी जनवरी १९६१ में इसकी चिकित्सा चलरही है।

लिखते दु:खने लगती हैं, अक्षर कहीं से कहीं चला जाता है सुपाठ्य भी लेख नहीं बनपडता। यह तो रोग सम्बन्धी चर्चा थी। इसके अतिरिक्त परिस्थियों की कठिनाईयां भी पर्याप्त हैं जो निम्न हैं।

१—निजी पुस्तकसंग्रह न होने से अन्य पुस्तकालयों के अधीन होना पडता है।

२—पुस्तकालय भी सर्वत्र नहीं मिलते।

३—पुस्तकालय मिलजाने पर ठहरने को वहां प्राय: स्थान नहीं होता।

४—आर्य समाज मन्दिरों में प्राय: कन्यापाठशालादि संस्था संवास या गृहस्थनिवास या बरातों के वासावास होते हैं, कहीं ये संस्था आदि न भी हों तो महीना बीस दिन वहां ठहरने की अनुमति नहीं मिलती अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति होने की तो क्या कथा।

५—लेखन कार्य जैसे गम्भीर कार्य करने के लिये बाहिरी बातों एवं कार्यों से हटकर धैर्य से बैठना पडता है अत: किसी व्याख्यान प्रसङ्ग या उत्सव आदि में जाने का प्रथम तो अवसर नहीं मिलता अपितु निमन्त्रण भी व्याख्यानप्रसङ्ग या उत्सव के नहीं मिलते अपने गुप्त क्षेत्र में रहने से तथा अधिकारियों के साथ वैसा सम्पर्क या परिचय आदि न होने से।

६—मस्तिष्क से किसी विषय पर खोज करना, पुन: स्वयं साधारण (रफ) लेख तैयार करना फिर सुलेखबद्ध (फेयर प्रेसकापी) स्वयं करना, छपाने की व्यवस्था के लिये दौड धूप करना, छपते

समय प्रूफशोधन, छपजाने पर प्रचार की यथोचित व्यवस्था करना आदि होता है।

उपर्युक्त कठिनाईयों से अब आगे मेरे द्वारा लेखनकार्य होने की सम्भावना नहीं भी है।

वक्तव्य—आर्यसमाज की ओर से एक ऐसा आश्रम बनना चाहिए जहां केवल संन्यासी ही रहते हों, आर्य संन्यासी जहां तहां प्रचार कर के विश्रामार्थ ठहरसकें और स्थिररूप से भी लेखनकाय एवं योगाभ्यास साधन करसकें। कुछ आश्रम हैं जो दो प्रकार के हैं या तो जहां संन्यासी भी कोई कोई होते हैं परन्तु असंन्यासियों का प्राधान्य है नगरनिवास जैसा भीड-भडक्का और वातावरण है। या फिर कोई कोई किसी एक संन्यासी का निजीरूप में आश्रम है वह उनकी विचारधारा के वातावरण से भरपूर होता है जो प्राय: ऋषिदयानन्द एवं आर्यसमाज की विचारधारा के विपरीत होता है वहां स्थिररूप से रहना तो क्या कुछ दिन ठहरना भी आत्महत्या सा प्रतीत होता है। अत: ऐसे संन्यासाश्रम की नितान्त आवश्यकता है जहां ऋषि दयानन्द एवं आर्यसमाज की विचारधारा का ही अधिकार हो। वह ऐसा आश्रम किसी व्यक्ति की सम्पत्ति न हो और किसी प्रान्तीयसभा से सम्बद्ध भी नहो किन्तु सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सम्पत्ति के रूप में रहे और समस्त सञ्चालन-अधिकार भी उक्त सभा का ही रहे। एक बड़ा पुस्तकालय भी वहां हो। बड़े बड़े आर्यसमाज और बड़े बड़े आर्य धनी मानी जन इस विषय में विचार करें एतदर्थ

सार्वदेशिक सभा को अपना अपना धन से सहयोग प्रदान करे।

चेतावनी—

मनुष्य क्या आगे के लिये सोचता है और क्या हो जाता है? मानव का आगे के लिये सोचना तो स्वाधीन है परन्तु होना तो कर्मानुसार ईश्वराधीन है। मानव को अपने भविष्य का ज्ञान नहीं क्या होगा क्या कर सकेगा? आगे जीवित रह सकेगा भी या नहीं? निकट भविष्य में कहीं मृत्यु का ग्रास तो न बन जावे, न भी मृत्यु का ग्रास बने जीवित भी रहे पर क्या पता जीवित रहने पर भी कोई गहन रोग अन्तःस्थल को आघात पहुंचाने वाला या कोई स्थायी रोग जीवन भर साथ साथ चलने वाला तो पीछे न लग जावे जिसके औषधोपचार में ही निरन्तर फंसा रहे, अध्यात्म साधना परमात्मोपासना को शान्ति से न कर सके, अतः यौवन काल से ही अध्यात्म साधन को साधले परमात्मोपासना में अपने को कृतकृत्य करले, पता नहीं फिर क्या गति होती है क्या मति बनती है? अध्यात्म साधना परमात्मोपासना इस जीवित देह कुटी का सुप्रतिफल (बीमा) है, इस कुटी को आज आग लगी तो क्या कल आग लगी तो क्या? आन्तरिक-सम्पत्ति अध्यात्म-सम्पत्ति ब्रह्मसम्पत्ति तो आंच से परे है, सुरक्षित है, सम्प्राप्त है ही। फिर पछताने का काम नहीं, रोने का नाम नहीं। संसार में मानव जिस लिये आया उसे पाया, बस यही जीवन की पूर्णता है, सफलता है, सत्यता है। नही तो पछताना, हानि उठाना, रोना

और जीते हुए भी मरना ही है। अत एव कहा है—"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नोचेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" इस जीवन में जान लिया तो ठीक है इस जीवन में नहीं जाना तो भारी हानि, महान् विनाश है।

❀ इति ❀

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड